वर्ष–७ अक्टूबर–१९८८ अंक–१०

Sreemat
Swami Nikhileshwarananda Ji Maj.

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति अमरावती ,,
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)
४९. श्री गोविन्द ढनढनिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
५०. श्री निखिल शिवहरे दमोह (म० प्र)
५१. श्री बी० भी० नागोरी कलकत्ता (पं० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा—समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री विनुभाई भलाभाई पटेल—खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एम० सी० डाबरीवाला—कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेयी—जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं).
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्याय—एलेन गंज, इलाहाबाद
५९. श्री बसन्त लाल जैन—कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ—हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु सेवान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका—डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, राँची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विजयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. श्री दुर्गा स्तोत्रम्		२
३. विवेक चूडामणि	स्वामी वेदान्तानन्द	३
४. नाम माहात्म्य	स्वामी धीरेशानन्द	७
५. मातृत्व का जागरण	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	११
६. मधु कैटभ वध	स्वामी शशांकानन्द	१६
७. परमहंस श्रीरामकृष्ण देव एवं जगज्जननी माँ शारदा	श्री उमेश चन्द्र	१९
८. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	श्री चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	२३
९. चार महावाक्य—चार अवस्थाएँ	ब्र० चंद्रकांत	२७
१०. साधना और सिद्धि (बोध कथा)		२८

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—७ अक्टूबर—१९८८ अंक—१०

इष्टदेव का हृदय कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक
शिशिर कुमार मल्लिक
श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय।
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि सपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें :

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

नाव पानी में रहे तो कोई हर्ज नहीं, पर नाव के अन्दर पानी न रहे, वरना नाव डूब जाएगी। साधक संसार में रहे तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु साधक के भीतर संसार न रहे।

(२)

इस प्रकार विवेक-विचार किया करो :—कामिनी और कंचन अनित्य हैं, एकमात्र ईश्वर ही नित्य हैं। रुपये से क्या मिलता है? दाल-रोटी, कपड़े और रहने के लिए जगह—बस इतना ही, और कुछ नहीं। रुपये से निश्चित ही ईश्वर नहीं मिलते। रुपया हरगिज जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता। इसी को विवेक-विचार कहा जाता है।

रुपये में क्या रखा है, सुन्दर स्त्री की देह में भी क्या है! विचार करके देखो, सुन्दरी की देह में सिर्फ हाड़, माँस, चमड़ी, चरबी, खून, मल, मूत्र,—यही सब हैं। पर आश्चर्य है कि मनुष्य ईश्वर को छोड़ इन्हीं चीजों में मन लगाता है।

(३)

बछड़ा बीसों बार गिरता और बीसों बार उठता है, तब कहीं ठीक से खड़े होना सीखता है। साधना में भी अनेक बार गिरना और उठना पड़ता है, तब जाकर सिद्धि मिलती है।

(४)

सत्यवादी, सत्यनिष्ठ हुए बिना सत्यस्वरूप भगवान् की प्राप्ति नहीं हो सकती।

श्री दुर्गा स्तोत्रम्

देवी प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं, त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥

आधारभूता जगतस्त्वमेका, महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नम् लङ्घ्य वीर्ये ॥

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या, विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्, त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति हेतुः ॥

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्, का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥

अर्थः—शरणागत की पीड़ा दूर करनेवाली देवि ! हम पर प्रसन्न होओ। सम्पूर्ण जगत् की माता ! प्रसन्न होओ। विश्वेश्वरि ! विश्व की रक्षा करो। देवि। तुम्हीं चराचर जगत् की अधीश्वरी हो। तुम इस जगत् का एकमात्र आधार हो, क्योंकि पृथ्वी रूप में तुम्हारी ही स्थिति है। देवि ! तुम्हारा पराक्रम अलंघनीय है। तुम्हीं जलरूप में स्थित होकर सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करती हो। तुम अनन्त बल सम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्व की कारणभूता परामाया हो। देवि ! तुमने इस समस्त जगत् को मोहित कर रखा है। तुम्हीं प्रसन्न होने पर इस पृथ्वी पर मोक्ष की प्राप्ति कराती हो। देवी ! सम्पूर्ण विद्याएं तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। जगत् में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं। जगदम्ब ! एक मात्र तुमने ही इस विश्व को व्याप्त कर रखा है। तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है ?

विवेक चूड़ामणि

—स्वामी वेदान्तानन्द

अनुवादक—डॉ० आशीष कुमार बनर्जी

वाराणसी

[विवेक चूड़ामणि शंकराचार्य का प्रसिद्ध ग्रंथ है। स्वामी विवेकानन्द इसे सदैव अपने पास रखते थे। स्वामी वेदान्तानन्द प्रणीत इसके बंगला भाष्य का हिन्दी अनुवाद इस अंक से हम क्रमशः प्रकाशित करेंगे। अनुवादक हैं रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी में कार्यरत डॉ० आशीष कुमार बनर्जी सं०—]

सर्व वेदान्त सिद्धान्त गोचरं तम् गोचरम्।
गोविन्दं परमानन्द सद्गुरुं प्रणतोऽस्म्यहम्॥१॥

सर्व वेदान्त सिद्धान्त गोचरं (सभी वेदान्त शास्त्र के विषय) अगोचरं (वाक्य मन के अतीत) परमानन्दं (परमानन्द स्वरूप) सद्गुरुं (सदगुरु) तं (उन) गोविन्दं (परमात्मा को) अहं (मैं) प्रणतः अस्मि (प्रणाम करता हूं)

अथवा

सर्ववेदान्त सिद्धान्त गोचरं (सभी वेदान्त शास्त्र के विषय) अगोचरं (वाक्य मन के अतीत) परमानन्दं (परमानन्द रूप -परमात्मा स्वरूप) सद्गुरुं तं गोविन्दं (गोविन्द नाम के अपने सद्गुरु को) अहं प्रणतः अस्मि (मैं प्रणाम करता हूँ) ॥१

[इस श्लोक में ग्रंथकर्ता ने बड़ी कुशलता से परमात्मा तथा अपने गुरु गोविन्दपाद को एक साथ प्रणाम निवेदन किया है]

सभी वेदान्त सिद्धान्त के द्वारा जिनको जाना जाता है, परन्तु जो वाक्यमन के अगोचर, परमानन्द स्वरूप, तथा सभी गुरुओं के गुरु स्वरूप हैं, उन वेदान्त वेद्य परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ। अथवा—

सभी वेदान्त शास्त्र के विषय, वाक्यमन के अतीत परमानन्द स्वरूप अपने सद्गुरु आचार्य गोविन्द पाद को मैं प्रणाम करता हूँ।१

गो शब्द का अर्थ है वाणी या वेदान्त वाक्य। वेदान्त वाक्य की सहायता से जिसे लाभ किया जाता है, जाना जाता है—उसे गोविन्द कहते हैं।

जन्तूनां नरजन्म दुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता
तस्माद्वैदिक धर्ममार्गपरता विद्वत्त्वमस्मात्परम्।
आत्मानात्मविवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना संस्थिति—
मुक्तिर्नो शतजन्म कोटि सुकृतैः पुण्यैर्विना लभ्यते ॥२॥

जन्तूनां (जीवों का) नरजन्म (मनुष्य शरीर लाभ) दुर्लभम् (दुर्लभ है)। अतः (इससेमनुष्य शरीर प्राप्त होने पर भी) पुंस्त्वं (पुरुषदेह-लाभ) [दुर्लभ है]। ततः (उससे भी) विप्रता (ब्राह्मणशरीर-लाभ दुर्लभ है) तस्मात् (ब्राह्मण शरीर लाभ होने पर भी) वैदिकधर्म मार्गपरता (वेदविहित धर्ममार्ग में निष्ठा) [दुर्लभ है]। अस्मात् (इससे) विद्वत्वम् (शास्त्रों का तात्पर्यपूर्ण ज्ञान) परम् (उत्कृष्ट है)। आत्म-अनात्म विवेचनं (आत्म और अनात्म विषय का विवेक), स्वनुभवः (अपने स्वरूप

का अनुभव), ब्रह्मात्मना संस्थितिः (ब्रह्म के सहित अभेद भाव से अवस्थिति) [इन सबमें पहले की अपेक्षा बाद वाली उत्कृष्ट है] । [ब्रह्म के साथ अभेद-भाव में अवस्थान रूप] मुक्तिः (मुक्ति) शतजन्मकोटि सुकृतैः (शत कोटि जन्मों में सुचारु रूप से अनुष्ठित) पुण्यैर्विना (निष्काम भाव से पुण्य कर्म समूह के अनुष्ठान बिना) नो लभ्यते (प्राप्त नहीं होता) ॥२॥

मनुष्य जन्म का लाभ दुर्लभ है। मनुष्य जन्म-लाभ होने पर भी पुरुष देह की प्राप्ति, पुरुष देह पाने पर भी ब्राह्मण जाति में जन्म, ब्राह्मण होकर जन्म लेने पर भी वैदिक धर्म में निष्ठा, धर्मनिष्ठा होने पर भी शास्त्र का मर्मज्ञान—जगत में इन सबमें पहले की अपेक्षा बाद वाली दुर्लभतर है। शास्त्रज्ञ व्यक्ति के लिए आत्म अनात्म विचार दुर्लभ, निज स्वरूप की अनुभूति दुर्लभतर एवं ब्रह्म के सहित सर्वदा अभेद भाव में स्थिति दुर्लभतम है। शत कोटि जन्म में सुचारु रूप से किये गये निष्काम पुण्य कर्म के बिना इस प्रकार को मुक्ति का लाभ सम्भव नहीं है।२

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रह हेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुष संश्रयः ॥३।

मनुष्यत्वं (मनुष्य जन्म) मुमुक्षुत्वं (मुक्ति लाभ की इच्छा) महापुरुषसंश्रयः (ब्रह्मज्ञ पुरुष का संग) एतत् त्रयम् एव (ये तीनों ही) दुर्लभम् (दुर्लभ हैं)। देवानुग्रह हेतुकम् (ईश्वर के अनुग्रह से ही ये प्राप्त होते हैं) ॥३

मनुष्य जन्म प्राप्ति, संसारबंधन से मुक्ति लाभ की इच्छा एवं ज्ञानी सद् गुरु का आश्रय लाभ, ये तीनों जगत में दुर्लभ हैं। केवल ईश्वर के अनुग्रह के द्वारा ही इनकी प्राप्ति सम्भव है।

लब्ध्वा कथंचिन्नरजन्म दुर्लभं
तत्रापि पुंस्त्वं श्रुति पार दर्शनम्।
यस्त्वात्ममुक्तौ न यतेत मूढ़धीः
स ह्यात्महा स्वं विनिघ्नन्त्य सद्ग्रहात् ॥४॥

कथंचित् (किसी प्रकार) दुर्लभं नरजन्म (दुर्लभ नरजन्म), तत्र अपि (उस नरदेह में) पुंस्त्वं (पुरुष शरीर) [एवं] श्रुतिपारदर्शनम् (वेदान्त विचार में कुशलता) लब्ध्वा (प्राप्त होकर) यत् मूढ़धीः (जो विवेक रहित निर्बोध व्यक्ति) आत्म मुक्तौ न यतेत (स्वयं की मुक्ति के लिए प्रयत्न नहीं करता) सः आत्महा (वह आत्म घाती पुरुष) हि (निश्चय ही) असद्ग्रहात् (मिथ्या वस्तु के ग्रहण के फलस्वरूप) स्वं (स्वयं का) विनिहन्ति (विनाश करता है) ॥४॥

किसी पूर्वार्जित पुण्यकर्म के फलस्वरूप मनुष्य जन्म एवं मनुष्य जन्म में पुरुष देह एवं वेद वेदान्त में पांडित्य लाभ कर जो स्वयं के मुक्तिलाभ के लिए प्रयत्न नहीं करता, वही व्यक्ति यथार्थ आत्मघाती है। क्योंकि, मिथ्या वस्तु के ग्रहण के फलस्वरूप वह स्वयं का विनाश करता है—अधोगति के पथ पर अग्रसर होता है।

परमानन्द स्वरूप स्वतः प्रकाशमान आत्मा को अस्वीकार कर, देहादि मिथ्या वस्तु को आश्रय कर जीवन धारण आत्म हत्या के ही तुल्य है। श्रुति कहती है –

असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये केचात्महनोजनः ॥ईश३

"जो लोग आत्मभाव में भावित नहीं हैं, वे देवता मनुष्य अथवा और कुछ क्यों न हों, असुर कहाने योग्य हैं। उनका आवासभूत लोक समूह अर्थात् विभिन्न जन्म एवं जीवनदृष्टि प्रतिरोधक अज्ञानान्धकार से आवृत है। जो सब व्यक्ति आत्मघाती हैं—अविद्या द्वारा जिनका सारा जीवन अभिभूत रहा, जीवित अवस्था में जिन्हें आत्मनुभूति नहीं हुई—मृत्यु के बाद उनका जन्म असुरों के लोक समूह अर्थात् विभिन्न हीन योनियों में होता है।"

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति ना चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।के, २/५

"इसी जीवन में यदि किसी ने सत्य को जाना, ब्रह्मज्ञान-लाभ में समर्थ हुआ, तो उसका जीवन कृतकृत्य है, धन्य है। और इस जन्म में यदि ज्ञान लाभ नहीं हुआ तो महती विनाश की प्राप्ति होती है, बारबार संसार का दुःख भोग होता है"

मुक्ति लाभ में उदासीन मनुष्य को मूढ़ कहे जाने के और कारण कहते हैं। स्वार्थसिद्धि के लिए सब पागल हो रहें हैं; परन्तु यथार्थ स्वार्थ क्या है? किस उपाय द्वारा वह सिद्ध हो सकता है, जिसे यह समझ नहीं, वह निर्बोध के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

इतः को न्वस्ति मूढ़ात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति।
दुर्लभं मानुषं देहं प्राप्य तत्रापि पौरुषम् ॥५॥

यः (जो व्यक्ति) दुर्लभं मानुषं देहं (दुर्लभ मनुष्य देह) तत्र अपि (और मनुष्य जन्म में) पौरुषम् (पुरुष शरीर) प्राप्य तु (पाकर भी) स्वार्थे प्रमाद्यति (यथार्थ स्वार्थ विषय में भूल कर बैठते हैं) इतः नु (इसकी अपेक्षा अधिक) कः मूढ़ात्मा अस्ति (निर्बोध व्यक्ति कौन है)? ५

दुर्लभ मनुष्य जन्म एवं पुरुष देह लाभ करके भी जिस व्यक्ति ने अपने यथार्थ स्वार्थ को नहीं समझा, आलस्य वश अपने मुक्तिसाधन में उत्साही नहीं हुआ, इस जगत में उसकी अपेक्षा निर्बोध व्यक्ति और कौन है?५

ब्रह्म के साथ आत्मा की ऐक्यानुभूति मुक्ति लाभ का एकमात्र उपाय है। किसी कर्म के द्वारा मुक्ति लाभ सम्भव नहीं।

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्
कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः।
आत्मैक्यबोधेन विनापि मुक्तिः—
न सिद्ध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ॥६॥

[पुरुषगण] [पुरुषगण] शास्त्राणि वदन्तु (शास्त्र पाठ कर, उस विषय में वादानुवाद करने मे सक्षम हैं), देवान् यजन्तु (देवगण की प्रीति के लिए यज्ञ कर सकते हैं) कर्माणि कुर्वन्तु (शास्त्रविहित कर्म का अनुष्ठान कर सकते हैं), देवताः भजन्तु (इष्ट-देवतागणों की उपासना कर सकते हैं)। अपि (इन सब के होते हुए भी) आत्मैक्यबोधेन विना (ब्रह्म के साथ आत्मा के एकत्व बोध के विना) ब्रह्मशतान्तरे अपि (ब्रह्मा के सौ वर्ष के आयु काल में भी) मुक्तिः न सिद्ध्यति (मुक्ति लाभ संभव नहीं)।६

कोई शास्त्र पाठ व विचार कर सकते हैं, यज्ञादि कर सकते हैं शास्त्रविहित विविध कर्मों का अनुष्ठान कर सकते हैं, इष्ट देवता की उपासना कर सकते हैं; परन्तु ब्रह्म ज्ञान के बिना इन सभी साधनाओं द्वारा ब्रह्मा की आयु के सौ वर्षों में (अर्थात् अनन्त काल में) भी मुक्ति लाभ नहीं होगा ॥६

ब्रह्मा की आयु मनुष्य के ४, ३२, ०००,००० वर्ष में ब्रह्मा का एक दिन होता है। इस प्रकार ब्रह्मा का एक दिन जगत की स्थिति काल है। ब्रह्मा इस प्रकार के दिनों के सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं। उसके बाद महाप्रलय होता है।

अमृतत्वस्य नाशास्ति वित्तेनेत्येव हि श्रुतिः।
ब्रवीति कर्मणो मुक्तेरहेतुत्वं स्फुटं यतः ॥७॥

वित्तेन (वित्त के द्वारा) अमृतत्वस्य आशा (अमृतत्व की, मुक्ति की आशा) न अस्ति इति (नहीं है) – एव हि (इस प्रकार ही) श्रुति ब्रवीति (श्रुति कहती है)। यतः (श्रुति वाक्य में) कर्मणः (कर्म द्वारा) मुक्तेः (मुक्ति के विषय में) अहेतु त्वं (अकारणत्व) स्फुटम् (स्पष्ट रूप से कहा गया है) ॥७

"वित्त के द्वारा अमृतत्व लाभ की आशा नहीं है" इस वाक्य द्वारा श्रुति ने 'किसी कर्म द्वारा मुक्तिलाभ सम्भव नहीं' यह बात स्पष्ट रूप से कह दी है ॥७

ऋषि याज्ञवल्क्य ने संन्यास ग्रहण के पूर्व अपनी समस्त सम्पत्ति अपनी दोनों पत्नियों कात्ययिनी एवं मैत्रेयी में विभाजित करने की इच्छा प्रकट की। ऋषि के अभिप्राय को सुनकर मैत्रेयी ने उनसे पूछा, "हे भगवन्, धन से परिपूर्ण समस्त पृथ्वी यदि मेरी हो जाय, तो उसके द्वारा मैं क्या अमर हो सकूंगी ?" उत्तर में याज्ञवल्क्य ने कहा 'धनी व्यक्तियों का जीवन जैसा होता है, तुम्हारा जीवन भी उसी प्रकार भोग पूर्ण होगा। परन्तु वित्त द्वारा अमरत्व लाभ की आशा नहीं है।" अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन इति।" यह सुनकर मैत्रेयी ने कहा, 'जिसके द्वारा मैं अमर न हो सकूंगी, उसे लेकर मैं क्या करूंगी ?"—'येनाहं नामृता स्यां तेनाहं किं कुर्याम् ?" बृ उ, २/४/२-५

अतो विमुक्त्यै प्रयतेत विद्वान्
संन्यस्त बाह्यार्थ सुखस्पृहः सन्।
सन्तं महान्तं समुपेत्य देशिकं
तेनोपदिष्टार्थ समाहितात्मा ॥८॥

अतः (इस हेतु) विद्वान् (बुद्धिमान पुरुष) संन्यस्त बाह्यार्थ सुखस्पृहः सन् (बाह्य विषयों मे सुखभोग की स्पृहा त्याग कर) सन्तं महान्तं देशिकं (सदगुण-सम्पन्न, उदारचरित आत्मज्ञ सदगुरु को) समुपेत्य (प्राप्त होकर) तेन उपदिष्टार्थ-समाहितात्मा (उस गुरु द्वारा उपदिष्ट विषयों में मन को समाहित कर) विमुक्त्यै (मुक्ति लाभ के लिए) प्रयतेत (प्रयत्न करेंगे) ॥८

अतः बुद्धिमान व्यक्ति समस्त बाह्य सुखभोग की आकांक्षा का परित्याग कर साधु आत्मज्ञ महापुरुष को गुरु रूप में प्राप्त होकर उनके द्वारा उपदिष्ट साधना में मन को एकाग्र करेंगे एवं मुक्ति लाभ के लिए प्रयत्नशील होंगे ॥८

उद्धरेदात्मनात्मानं मग्नं संसारवारिधौ।
योगारूढ़त्वमासाद्य सम्यगदर्शन निष्ठया ॥९॥

सम्यगदर्शननिष्ठया (आत्म दर्शन निष्ठा द्वारा) योगारूढ़त्वम् (योगारूढ़ अवस्था) आसाद्य (प्राप्त होकर) संसारवारिधौ मग्नम् (संसार समुद्र में मग्न) आत्मानम् (आत्मा को) आत्मना (स्वयं द्वारा) उद्धरेत (उद्धार करे) ॥९॥

संशय एवं विपर्यय रहित एवं आत्मनिष्ठ चित्तवृत्ति के द्वारा इन्द्रिय समूह के विषय एवं सभी कर्मों में आसक्ति त्याग कर संसार समुद्र में निमग्न आत्मा को निज साधना द्वारा उद्धार करे ॥९

"यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्यते।
सर्व संकल्प संन्यासी योगारूढ़स्तदोच्यते ॥"
गी ३/४

"समस्त संकल्पत्यागकारी साधक जब इन्द्रिय भोग्य सभी विषयों में अथवा नित्य नैमित्तिकादि कर्म में आसक्ति शून्य होते हैं तब उन्हें योगारूढ़ कहा जाता है।

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥
गी, ६/५

विवेकयुक्त मन के द्वारा स्वयं को संसार-सागर से उद्धार करे। कभी स्वयं को विषयासक्त न करे। शुद्ध मन ही मनुष्य का वास्तविक हितकारी मित्र है। पुनः विषयासक्त मन मनुष्य के संसार बंधन का हेतु परम शत्रु होता है।

नाम–माहात्म्य

— स्वामी धीरेशानन्द

(उद्बोधन, आश्विन १९८३। बेलुड़ मठ के शास्त्रज्ञ एवं लेखक प्रवीण संन्यासी। हिन्दी रूपान्तर : प्र० विमलेश्वर दे।)

श्री रामकृष्ण देव कहा करते थे "प्रातः काल तथा सायंकाल में ताली दे दे कर यदि हरि नाम किया करो तो सब पाप-ताप चला जायगा। जैसे पेड़ के नीचे ताली बजाने से सब पक्षी उड़ जाते हैं, वैसे ही हरिनाम लेने से देहरूप पेड़ से अविद्यारूपी पक्षी उड़ भागता है। .....पहले लोग योगयाग किया करते थे; अब कलि के जीवों का अन्नगत प्राण है; दुर्बल मन है, हरिनाम एकाग्र के साथ लेने से संसार व्याधि का नाश हो जाता है। जाने, अनजाने या भ्रान्ति से, किसी भाव से नाम लेने से, फल मिलेगा।

इस कलियुग में नारदीय भक्ति मत ही प्रशस्त है। दूसरे दूसरे युग में बहुत प्रकारों की कठोर साधना करने का नियम था। उन सब साधनाओं से इस युग में सिद्धिलाभ करना बहुत कठिन है। एक तो जीव अल्पायु है, कठोर तपस्या उससे कैसे सम्भव होगा ?

(श्री श्री रामकृष्ण उपदेश, युगधर्म १-५)

कहा जाता है "देह का सुख निद्रा से और मन का सुख नाम से।" सुनिद्रा से शरीर स्वच्छ, स्फूर्तिवान लगता है। सब लोग शरीर के लिए ही मस्त रहते हैं, शरीर के पुष्टि-साधन, आहार-विहार में ही मत्त हैं। लेकिन आदमी सिर्फ रोटी से सन्तुष्ट नहीं होता है, उसके मन के लिए भी उपयुक्त भोजन की जरूरत है। इसलिए काव्य, नाटक, दर्शन साहित्य, शिल्प विज्ञान इत्यादि का अनुशीलन जरूरी है। यद्यपि विभिन्न प्रकार की विद्या के अभ्यास से जीव को आनन्द मिलता है, किन्तु भगवन्नाम से चरम सात्विक आनन्द विकसित होता है।

नाम की अचिन्त्य शक्ति है। इसको ही शब्द-कहा जाता है। एक शब्द से आदमी शत्रु बनता है एवं एक शब्द से मित्र भी बन जाता है, यह प्रत्यक्ष रूप से देखा जाता है।

"राम"–परमात्मा का एक नाम है। रामभक्त तुलसीदास ने कहा है —

"रामनाम मणिदीप धरु जीह देहरी द्वार
तुलसी भीतर बाहिरहु जो चाहत उजियार॥

ऊँची आवाज से नाम कीर्त्तन करने के प्रभाव से अपने अन्दर की मलिनता बाहरी एवं दूसरे श्रोताओं की अविद्या का नाश होता है। क्योंकि वे दुर्बल हैं दूसरी ओर नाम की शक्ति प्रबल होती है।

एक राम, उनके कितने नाम। विभिन्न रुचियों के लोगों के सन्तोष हेतु उन्होंने ही कृपा कर बहुत नाम लिये हैं। जैसे —

"रामाय रामचन्द्राय, रामभद्राय वेधसे
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥"

इस श्लोक में रामचन्द्र के सात नाम हैं। ये नाम रुचि वैचित्र्य के कारण विभिन्न भक्तों के प्रिय होते हैं। जैसे महाराज दशरथ के लिए 'राम' नाम परम प्रिय था। उन्होंने 'राम" नाम उच्चारण करते हुए परम आनन्द का अनुभव किया था—मृत्युकाल में)

'राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुवर विरह राउ गयउ सुरधाम ॥

इस प्रकार से दो बार राम नाम उच्चारण के साथ दशरथ ने अपने प्रिय पुत्र के विरह में शरीर त्याग करके स्वर्ग लोक में प्रस्थान किया।

महाप्रभु श्री चैतन्य देव ने नाम महिमा के प्रसंग में रचित 'शिक्षाष्टक' स्तोत्र में कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति—
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजाननानुरागः ॥

तुम्हारी नामावली बहु प्रकारों से प्रकाशित हुई है उसमें तुम्हारी पूरी शक्ति अर्पित हुई है; नामस्मरण के बारे में किसी समय की पाबन्दी नहीं है, हे भगवान, तुम्हारी ऐसी करुणा है किन्तु मेरा ऐसा दुर्दैव है कि इस जन्म में मेरा अनुराग नहीं उत्पन्न हुआ।

ईश्वर परम कृपालु हैं उनकी कृपा का परिचय इन बहु प्रकार के नाम धारण एवं उन नाम समूहों के उच्चारण से उनकी पावन शक्ति का संचारण होता है। नाम स्मरण बहुत सहज साधन है। थोड़ी सी इच्छा सब कोई कर सकते हैं किन्तु दुर्भाग्य से लोग नहीं करते हैं। एक दिन एक भक्त वचनामृताकार श्री म के पास अपने मन की अशांति को व्यक्त कर रहे थे।

श्री 'म' ने कहा "ठाकुर के पास प्राणभर के प्रार्थना कीजिए। उनकी कृपा से सब अशान्ति दूर हो जायगी।

भक्त—प्रार्थना करने को भी मन नहीं चाहता है।

श्री म—उनके पास मनके दुःख को व्यक्त करके रोइए। रोने से उनकी कृपा होगी।

भक्त—रोना भी तो नहीं होता है।

श्रीम—तब उनके नाम लीजिए। नाम में रुचि होने से सब अशान्ति दूर हो जायगी।

भक्त—उनका नाम लेने की भी इच्छा नहीं होती है।

श्री म—तब Case Serious (मामला गंभीर) है। नाम में रुचि है Last Medicine (आखरी दवा)। इसे भी करने में इच्छा नहीं होने पर समझा जायगा कि रोग दुःसाध्य है। बचने की आशा कम है। अतः रोग बहुत गम्भीर है।

कृपा चार प्रकारों की है—ईश्वर कृपा, गुरु कृपा, शास्त्र कृपा एवं आत्म कृपा। इनमें आत्म कृपा मुख्य है। इसका अर्थ है साधक का अपना पुरुषकार। आत्मकृपा नहीं रहने से और तीन कृपाएं कार्यकारी नहीं होती हैं। ये तीन कृपाएं नित्य वर्त्तमान हैं। जीव आत्मकृपा के अभाव में उन तीन कृपाओं का सदुपयोग नहीं कर पाता और उसके सारे कार्य व्यर्थता में पर्यवसित हो जाते हैं।

आचार्य शंकर ने कहा है—

अधिकारिणमाशान्ते फलसिद्धि विशेषतः।
उपाया देशकालाद्या सन्त्यस्मिन् सहकारिणः।

किसी भी कार्य की फलसिद्धि अधिकारी पर विशेषरूप से निर्भर है।

देशकालादि साधन केवल इसका सहायक मात्र है।

अनधिकारी के लिए शास्त्र भी व्यर्थ है। कारण, जिसको स्वयं प्रज्ञा नहीं है, सूक्ष्म वस्तु समझने की शक्ति नहीं है, शास्त्र उसे क्या कर सकता है? नेत्रहीन मनुष्य के लिए दर्पण भी क्या उसे उसका मुख दिखा सकता है? ऐसे मनुष्य को साधुसंग, महंतों की सेवा तथा सश्रद्ध नाम-कीर्त्तन का साधन ही श्रेय है।

रामकृष्णदेव ने कहा है, जानकर, या अनजाने, या भ्रान्ति में भगवन्नाम लेने से फल अवश्यम्भावी है। ब्राह्मण अजामिल एक शूद्राणी के प्रेम में फंस कर कई सन्तानों का जनक हुआ था, और दस्युवृत्ति से परिवार का पालन पोषण करने से कर्मचंडालत्व को प्राप्त हुआ। लोमश मुनि को दुरारोग्य गात्रदाह रोग होने पर नारद मुनि ने उनसे कहा कि किसी कर्मचंडाल का उच्छिष्ठ अन्न खाने से यह रोग छूट जायगा। लोमश मुनि बहुत अनुनयादि करने पर शुद्राणी से कुछ उच्छिष्ठ अन्न खाकर रोग मुक्त हुए। कृतज्ञता स्वरूप उन्होंने अजामिल से अनुरोध किया कि वह अपने कनिष्ठ पुत्र का नाम 'नारायण' रखे। अजामिल सहमत हुआ। मृत्युकाल के समय अजामिल भयंकर आकृति के यम दूत को देखने से भयभीत होकर प्रिय पुत्र को 'नारायण आओ' "नारायण आओ—दो बार कहने पर ये दो शब्द मिल कर एक शब्द में परिणत हुआ—'नारायणाय'। इस प्रकार से वह सर्वपाप मुक्त हो गया।

भ्रान्ति से या भ्रान्त भाव में नामोच्चारण करने से भी फल होता है—

'मूर्खो जपति विष्णाय विद्वान जपति विष्णवे।
उभयोस्तु फलं तुल्यं भावग्राही जनार्दनः॥

विद्या विहीन मूर्ख 'विष्णाय नमः' कहता है। व्याकरण की दृष्टि से 'विष्णवे नमः' शुद्ध है। किन्तु वह यह नहीं जानता है। वह आग्रह एवं आंतरिक भाव से 'विष्णाय नमः' जपता है। विद्वान व्यक्ति—

'विष्णवे नमः' यह शुद्ध मन्त्र जपता है।

किन्तु भगवान की दृष्टि से दोनों के जप का फल समान है। कारण भगवान भावग्राही हैं। वे लोगों के मन के भाव को ही ग्रहण करते हैं।

विचार की दृष्टि से सभी नाम उनके ही हैं, क्योंकि वे सर्ववर्णमय हैं। अंगरेज कवि टेनिसन के बारे में सुना जाता है कि अपना नाम जपते जपते उनको भाव समाधि होती थी। ऐसा कहा गया है कि टेनिसन अपने नाम को स्वय ही बार बार दुहरा कर नित्यचैतन्य सत्ता की उपलब्धि करते थे। अपनी आत्म कथा में उन्होंने इसका उल्लेख किया है। यह एक अद्भुत एवं आश्चर्य जनक है। उन्होंने लिखा है: 'अपने बचपन से ही मैं सम्पूर्णरूप से अकेला रहता था—उस समय एक प्रकार की जाग्रत भाव-समाधि का अनुभव करता था। साधारणतः अपना नाम २/३ बार स्वगत रूप से अपने कान में चुपचाप उच्चारण करने से यह भाव आता था। अकस्मात् भाव की तीव्रता से अपना व्यक्तित्व लुप्त होकर एक सीमाहीन अनन्त सत्ता में धीरे धीरे मिल जाता था। यह कोई अज्ञानजनित मूढ़ अवस्था नहीं थी—बल्कि हर तरह की भाषा से अतीत, स्पष्ट से स्पष्टतम, निश्चित वस्तु से निश्चिततम, एवं स्थूल जगत से भिन्न, रहस्यमय सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्मतम—जहाँ मृत्यु थी हास्यकर रूप से असम्भव। यदि व्यक्तित्व की विलुप्ति को मान भी लिया जाय तो भी वह विनाशरूप न होकर सत्य जीवन रूप में ही प्रतिभात हुआ। मैं उसे भाषा में वर्णन नहीं कर पाता....." (Quoted in Alfred Lord Tennison, a memoir, by his son, Hallan Tennison, Mc Millan co 1987, vol I) जगत में विभिन्न धर्मों में भगवान के नाम भी भिन्न हैं। जैसे हिन्दू जप करते हैं- 'राम,' 'कृष्ण,' 'हरि,' 'काली,' 'नारायण,' शिव—

इत्यादि। ईसाई लोग जपते हैं……' Ava Maria Jesus Christ my Lord, have mercy on me a Sinner'। मुसलमान लोग जप करते हैं—

'अल उपाहिद,' 'आहाद' (एक अद्वितीय), आकाम (दयालु)' करीम' (दाता); कुहुम' (पवित्र) 'कादिर' (शक्तिमान) ' 'करीम' (महान) 'नूर' (आलोक) इत्यादि अल्ला के २४ प्रसिद्ध नाम है।

बौद्धलोग 'ॐ मणिपद्मे हुँ'—यह मन्त्र जपते हैं। अतः इससे पता चलता है कि प्रत्येक धर्म में नाम जपने का विधान है। भगवान एक हैं—तो भी वे अनन्तमूर्त्ति हैं—अनन्त उनके नाम हैं। पहले कहा गया है कि भक्त को अपनी रुचि एवं भावानुयायी कोई एक विशेष नाम अच्छा लगता है। किन्तु यह सोचना गलत है कि दूसरे नामों की महिमा कम है। एक ही शक्ति के भिन्न भिन्न नाम होते हैं एवं उनमें से किसी भी नाम से पुकारने से वह जैसे आवाज देता है, ऐसी ही बात भगवान के लिए भी सही है। ईश्वर के सभी नामों की महिमा समान है इस भाव को मन में ग्रहण करके भक्त की रुचि तथा भावानुयायी नाम—विशेष को लेना चाहिए। हमलोग देखते हैं कि युगावतार श्री रामकृष्ण काली के उपासक होते हुए भी भगवान के विभिन्न नामों से गुण गाया करते थे। इस भाव को लेकर चलने से मन में किसी प्रकार के साम्प्रदायिक भाव एवं रूढ़िवादिता Conservatism नहीं प्रकट हो सकती है।

पहले जैसे कहा जा चुका है, भगवदुपलब्धि के लिए नाम स्मरण बहुत ही सहज साधन है। शास्त्रानुयायी श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, अर्चन, वन्दन इत्यादि भक्ति-साधना के प्रधान अंगों में कीर्त्तन, अर्थात् भगवान के नामगुणगान का ही विशेष प्राधान्य प्रतीत होता है। क्योंकि नाम में अनुराग आने से ही दूसरे प्रकारों का प्रश्न आता है। यदि उनके नाम में ही रुचि नहीं होगी तब तो उनके संबंध में श्रवण, स्मरण, सेवा, पूजार्चना इत्यादि भाव नहीं आ सकता है। भगवान के प्रति पहले प्रेम नहीं होने पर भी नाम करते करते क्रमशः उनकी प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। श्री श्री मा (सारदा देवी) का कथन है 'जपात् सिद्धिः' अर्थात् केवल जप से ही सिद्धि लाभ होता है। जप का अर्थ है बार बार भगवान का नाम उच्चारण करना। भगवान के नाम का उच्चारण करते करते क्रमशः ऐसे स्तर में उन्नीत होना है कि जब भक्त उपलब्धि कर सकता है कि नाम एवं नामी दोनों अभेद हैं।

श्री 'म' (श्री महेन्द्र नाथ गुप्त)

□

रामकृष्णमहं वन्दे पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।
सच्चिदानन्दरूपोऽपि योऽवतीर्णो युगे युगे॥

मातृत्व का जागरण

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

नारी जाति को जितना सम्मान एवं महत्त्व श्रीरामकृष्ण ने दिया है, संभवतः उतना और किसी अवतारी महापुरुष ने नहीं दिया है। पौराणिक अवतारों के क्रमिक तुलनात्मक अध्ययन से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है, तथा इससे कुछ रोचक तथ्य हमारे सम्मुख प्रकट होते हैं। मत्स्य, वराह, कूर्म एवं नृसिंह जैसे मानवेतर देहधारी अवतारों को छोड़ कर जब हम मानव शरीर धारी अवतारों का अवलोकन करते हैं तो सर्व प्रथम वामन अवतार के साथ किसी नारी मूर्ति को नहीं पाते। यही बात परशुरामावतार के साथ भी है। उल्टे परशुरामजी द्वारा अपनी माता की हत्या मानो नारी शक्ति की उपेक्षा का प्रतीक है। रामावतार में सीताजी की भूमिका गौण प्रतीत होती है। वे केवल सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति हैं, लेकिन कोई सक्रिय भूमिका वे स्वयं अदा नहीं करतीं। हाँ, माता कैकेयी सक्रिय हैं, लेकिन यहाँ उनकी पुरुषसम भूमिका है, मातृत्व की अभिव्यक्ति नहीं। श्री कृष्णावतार में भी श्री राधा की भूमिका गौण ही है। बुद्ध ने विवाह किया था किन्तु संन्यासी हो गये। बाद में उनकी पत्नी यशोधरा ने उनके द्वारा प्रवर्तित संन्यासिनी संघ में योगदान किया था। चैतन्य देव की धर्मपत्नी विष्णुप्रिया ने चैतन्य देव के संप्रदाय एवं उनके उपदेशों के प्रसार प्रचार में कुछ योगदान अवश्य किया था। ईसा मसीह ने विवाह नहीं किया। उनकी माता मेरी की आराधना ईसाई धर्मावलंबी करते हैं। लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से उनकी भूमिका क्या थी, ईसाई धर्म प्रचार में उन्होंने कितना योगदान किया, कहना कठिन है।

उपर्युक्त तथ्यों के संदर्भ में श्री रामकृष्ण के जीवन में नारी जाति के प्राचुर्य को देख कर हम अचंभित हो जाते हैं। श्री रामकृष्ण ने अपनी आराध्या एक नारी मूर्ति भवतारिणी काली को चुना। वे ईश्वर को, ब्रह्म को, माँ के नाम से पुकारना अधिक पसंद करते थे। भैरवी ब्राह्मणी नामक एक संन्यासिनी को उन्होंने अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया। अपनी भार्या सारदामणि देवी को वे अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखते थे। माँ सारदा उनकी चरणसेवा करती थीं। और साथ ही श्री रामकृष्ण उन्हें प्रणाम करते थे। यहाँ तक कि उन्होंने माँ सारदा की जगदम्बा ज्ञान से षोडषोपचार पूजा भी की थी।

अपनी जन्मदात्री माता के प्रति श्री रामकृष्ण की गहरी मातृभक्ति थी। उन्हें कष्ट न हो यह सोचकर उन्होंने वेदान्त साधना के समय तोतापुरी जी से संन्यास व्रत ग्रहण करते हुए भी गेरुआ वस्त्रादि संन्यास के बाह्य चिह्नों को धारण नहीं किया। वृन्दावन यात्रा के समय उनकी वहीं रह जाने की तीव्र इच्छा थी, लेकिन जब उन्हें यह ध्यान आया कि उनकी माता दक्षिणेश्वर में रह रही हैं, तो वे तत्काल वापस लौट आये।

साधना काल में श्री रामकृष्ण ने अपने ऊपर दो बार नारीभाव का आरोप किया था। वात्सल्य भाव की साधना के समय वे अपने को बालक राम, रामलला की माता कौशल्या समझते थे। मधुर

भाव की साधना के समय उन्होंने अपने पर सखी-भाव का आरोप किया था। वे अपने को वृज गोपी समझते थे, तथा स्त्रियों की तरह वस्त्र एवं आभूषण धारण करते थे। उनका यह नारीभाव आरोपण इतना तीव्र; प्रबल था कि उस समय वे अपने को एक नारी ही समझते थे। यही नहीं उनके शरीर में उसी तरह का परिवर्तन हो गया था। स्त्रियों के कपड़े पहन कर जब वे अन्य महिलाओं के साथ दुर्गामूर्ति का पूजन करते थे, तब स्वयं मथुरबाबू जो रात-दिन उनके साथ रहते थे, के लिए उन्हें पहचानना कठिन हो जाता था।

साधना के समय का यह रमणीय भाव बहुत मात्रा में श्री रामकृष्ण के साथ बाद में भी रह गया था। वे स्त्रियों की तरह चलते समय बाँया पैर पहले आगे बढ़ाकर चलते थे। उनके पास आने वाली भक्त महिलाओं को वे एक महिला ही प्रतीत होते थे, पुरुष नहीं। वे उनसे कभी संकोच का अनुभव नहीं करती थीं, जैसा संकोच किसी पुरुष के सामने होता है। श्री रामकृष्ण में नारीभाव इतना अधिक था कि प्रसिद्ध नाटककार तीक्ष्ण-बुद्धि संपन्न गिरीशचन्द्र घोष एक बार उनसे पूछ ही बैठे थे कि वे पुरुष हैं या नारी। अगर हम यह कहें कि श्री रामकृष्ण आधे पुरुष और आधे नारी थे तो यह कथन त्रुटिपूर्ण नहीं होगा। उनका शरीर पुरुष शरीर होते हुए भी स्त्रियोचित हाव भाव, चाल चलन एवं गुण उनमें इतने अधिक थे कि उन्हें नारी भी कहा जा सकता है। वे पुरुषों को पुरुषसिंह एवं स्त्रियों को स्त्रीरत्न प्रतीत होते थे। संसार के सभी स्त्री-पुरुषों में स्त्रियोचित एवं पुरुषोचित भाव रहते हैं। पुरुषों में पुरुषभावों का आधिक्य होते हुए भी कुछ न कुछ स्त्रियोचित भाव भी विद्यमान होते हैं। उसी तरह नारियों में भी कुछ न कुछ पुरुषोचित भाव पाये जाते हैं। लेकिन स्त्रियोचित एवं पुरुषोचित सब गुणों का ऐसा बराबर का संतुलित एवं पूर्ण विकास श्री रामकृष्ण को छोड़ बिरले ही किसी महापुरुष में संभव है। और यदि हम पृथक् रूप से पुरुषत्व एवं मातृत्व का रूप देखना चाहें तो स्वामी विवेकानन्द एवं माँ सारदा को देखना होगा। श्री रामकृष्ण मानो वे अर्द्धनारीश्वर शिव हैं, जिनके दक्षिण भाग में शिवावतार स्वामी विवेकानन्द हैं एव वाम भाग में जगन्मातृस्वरूपा माँ सारदा देवी।

इस संदर्भ में एक और महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है। श्री रामकृष्ण ने अपनी साधना के पश्चात् अपने शिष्यों को भी माँ जगदम्बा के प्रति भक्ति एव उनकी प्रतिमूर्तियों, संसार की समस्त नारियों का आदर करना भी सिखाया था। सर्व प्रथम स्वामी विवेकानन्द माँ जगदम्बा को स्वीकार नहीं करते थे। बल्कि श्री रामकृष्ण की आराध्या माँ काली का उपहास सा किया करते थे। लेकिन एक समय ऐसा आया जब उन्हें माँ काली को स्वीकार करना पड़ा था। वह दिन श्री रामकृष्ण के लिए अत्यन्त हर्ष का दिन था। स्वामी तुरीयानन्द जी ने एक बार श्री रामकृष्ण के सामने यह कह दिया कि वे नारी को घृणा करते हैं, क्योंकि वह साधक के पतन एवं बधन का कारण होती है। इस पर श्री रामकृष्ण ने उन्हें डाँटते हुए कहा कि नारी को माता के रूप में आदर करना सीखो। यही नहीं, श्री रामकृष्ण ने नारी एवं जगदम्बा के द्वारा अभिहित जीवन के एक महान् सत्य को अपने अद्वैत वेदान्ती गुरु तोतापुरी को सिखाया था। जगत् को मिथ्या मानने वाले जगदम्बा को अस्वीकार करने वाले वेदान्ती अन्ततः महा-माया की सत्ता को, शक्ति को स्वीकार करने को बाध्य हुए थे। इस तरह श्री रामकृष्ण ने उनकी आध्यात्मिक अनुभूति को पूर्णता प्रदान की थी।

माँ सारदा के आध्यात्मिक विकास में तो

श्री रामकृष्ण का विशेष योगदान था ही। षोडशी पूजा के द्वारा उनमें जगदम्बा की मातृशक्ति के जागरण एवं आह्वान के अलावा भी उन्होंने बड़ी सावधानी एवं प्रयत्न पूर्वक माँ सारदा को अपनी भावी कार्यसिद्धि के लिये तैयार किया था। अपने जीवन काल में ही उन्होंने एक विपथगामी पुरुष की आर्त धर्म-पत्नी को माँ सारदा के पास भेज कर उनसे मंत्र दीक्षा दिलवायी थी,। माँ का भक्त शिष्यों के प्रति मातृ प्रेम विकसित होते देख श्री रामकृष्ण विशेष रूप से प्रसन्न होते थे। अंतिम समय में तो उन्होंने माँ सारदा को स्पष्ट ही कहा था कि मैंने तो कुछ नहीं किया है, तुम्हें बहुत कुछ करना होगा। कलकत्ते के लोग अज्ञान के अंधकार में कीड़ों की तरह रेंग रहे हैं, उन्हें तुम्हें देखना होगा।

यह भी उल्लेखनीय है कि श्री रामकृष्ण के भौतिक लीला संवरण के बाद माँ सारदा चौंतीस वर्षों तक जीवित रही थीं। इसका कारण पूछे जाने पर माँ ने कहा था कि श्री रामकृष्ण का संसार के सभी के प्रति मातृभाव था एवं उसी की स्थापना के लिए वे उन्हें छोड़ गये हैं। अवतारों के क्रमिक अध्ययन के संदर्भ में यदि इस कथन का अवलोकन किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि श्री रामकृष्ण ने पहले आधी नारी और आधे पुरुष के रूप में अपनी भूमिका निभायी और इसके बाद ३४ वर्षों तक उन्होंने माँ सारदा की नारी-मूर्ति के माध्यम से अवतारों का प्रयोजन सिद्ध किया।

(२)

रामकृष्ण-सारदा अवतार के इस पक्ष विशेष के महत्व को समझने के लिए हमें नारीत्व, मातृत्व, आदि शब्दों द्वारा अभिहित भाव को भलीभाँति समझ लेना होगा। सात्विक दृष्टि से समग्र विश्व ब्रह्माण्ड में हम दो परस्पर विरोधी तत्वों को एक साथ कार्यरत पाते हैं। इन्हें सांकेतिक रूप में क्रमशः पुरुष एवं प्रकृति, शिव एवं शक्ति, नर एवं मादा आदि शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है। चीनी दर्शन में ताओ धर्म में इन्हें यिन एवं यांग कहा जाता है। ये वस्तुतः दो परस्पर विरोधी शक्तियों, प्रक्रियाओं के नाम हैं जो प्रकृति में, प्रत्येक जीव में, समाज एवं इतिहास के घटनाक्रम में दिखाई देते हैं।

प्रकृति में हम इन्हीं तत्वों को Centripetal and centrifugal forces; केन्द्रापसारी एवं केन्द्राभिमुखी शक्तियों के रूप में देखते हैं। सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति पृथ्वी आदि ग्रहों को अपनी ओर खींचती है पर पृथ्वी केन्द्रापसारी शक्ति के द्वारा उससे दूर भागना चाहती है। यही बात अणु-परमाणुओं के स्तर पर भी देखी जाती है। एक शक्ति नयी वस्तुओं, प्राणियों एवं वनस्पतियों की उत्पत्ति करती है, तो दूसरी उन्हें नष्ट करने में तत्पर है। कालक्रम में भी हम एक ओर अंधकारमय रात्रि देखते हैं, तो दूसरी ओर सूर्य के प्रकाश से उद्भासित दिवस। निद्रा एवं जागरण, दिन और रात, उत्तरायण और दक्षिणायण चन्द्रमा में कृष्ण पक्ष एवं शुक्ल पक्ष ये सभी चक्र की तरह एक के बाद दूसरा होते रहते हैं। समाज में भी व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं समाजतंत्र, तानाशाही और गणतंत्र की धारा बहती दिखाई देती है। एक जाति उठती है, कुछ वर्षों या सदियों तक उत्थान करती है और उसके बाद धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त होती है। संघटनात्मक एवं विघटनात्मक शक्तियाँ भी समाज में उठती गिरती दिखती हैं। मानव शरीर में भी दो भाग हैं वह वस्तुतः बना ही है द्विविध साम्य की व्यवस्था में। श्वास के बाद प्रश्वास, आहरण के बाद विसर्जन, सभी अंगों में परिलक्षित होता है।

लेकिन जिस पक्ष का हमारे प्रस्तुत विषय से सीधा सम्पर्क है, वह है मनोविज्ञान एवं अध्यात्म का

क्षेत्र। मानव मन में दमन और सहिष्णुता, आसक्ति एवं अनासक्ति, क्रूरता एवं मृदुता ये दोनों प्रकार के परस्पर विरोधी गुण पाये जाते हैं। दोनों की मानव के स्वास्थ्य एवं संतुलित विकास के लिए आवश्यकता है। दंडदाता पिता के नियंत्रण एवं स्नेहमयी माता के संरक्षण एवं क्षमादान के संतुलन से ही एक बालक का समुचित विकास संभव है। इसी प्रकार समाज में भी नियमबद्धता एवं स्वाधीनता का सामंजस्य होना चाहिए। नारी और पुरुष दोनों ही समाज को सुव्यवस्थित रखने में अपनी भूमिका अदा करते हैं। शक्ति, ज्ञान, विचार, कठोरता, श्रम, विकरालता, प्रहार का क्षमता, अनासक्ति आदि पुरुषोचित गुण हैं। दुर्बलता, भक्तिभावना, कोमलता, विश्राम, सुन्दरता, सहनशीलता, आसक्ति, आदि स्त्रियोचित गुण हैं। साधना में ये ही दो बिन्दु, पुरुषार्थ एवं शरणागति कहलाते हैं। जीवन में श्रम का जितना आवश्यकता है उतनी ही विश्राम का भी।

जिस समाज अथवा व्यक्ति में ये दोनों बराबर होते हैं, वह व्यक्ति या समाज सबसे सुखी एवं श्रेष्ठतम होता है। लेकिन ऐसी स्थिति विरली ही होती है। किसी भी समाज के इतिहास के उत्थान एवं पतन, के क्रम में यह स्थिति केवल कुछ समय तक ही रह सकती है। जिस प्रकार वर्ष में कुछ दिन ही ऐसे होते हैं जब न तो गर्मी अधिक होती है न ठंड, जिस प्रकार दिन-रात के चक्र में कुछ क्षण ही ऐसे होते हैं जब न अधिक प्रकाश होता है और न अधिक अंधकार, उसी तरह किसी भी समाज और राष्ट्र के इतिहास में भी कुछ समय ही इस तरह का स्वर्णिम काल रह सकता है जब अनुशासन और स्वातंत्र्य, दंड और क्षमा पूर्णरूपेण सन्तुलित हों।

इन दो तत्वों के सम्बन्ध में यह तथ्य भी स्मरणीय है कि इन दोनों में से किसी एक के पूरी तरह समाप्त होने पर सृष्टि संभव नहीं है। अतः प्रकृति ने इस प्रकार की अद्भुत व्यवस्था की है कि एक के भीतर दूसरे का बीज निहित कर दिया है। पुरुषत्व के भीतर ही मातृत्व का, पुरुष में प्रकृति का, कठोरता में कोमलता का बीज निहित रहता है। प्रत्येक पुरुष में चाहे वह कितना ही कठोर अथवा क्रूर क्यों न हो कोमलता का सूक्ष्म अंश रहता ही है जो कभी न कभी प्रकट होता है। उसी तरह प्रत्येक नारी हृदय में कठोरता का अंश भी छिपा रहता है। इसी बीज से युगों के संधिकाल में नयी सृष्टि का अविर्भाव होता है। इसी बात को चीनी दार्शनिकों ने यान एवं यिंग के माध्यम से बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है।

(३)

उपर्युक्त विवेचन के संदर्भ में माँ सारदा के आविर्भाव का महत्व हृदयंगम करना आसान होगा। स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि माँ सारदा के आविर्भाव से भारत की ही नहीं बल्कि विश्व की नारीजाति का नवजागरण होगा। उनका जन्म इसी के लिए हुआ है। हमने देखा है कि ऐतिहासिक दृष्टि से अब तक विश्व पुरुषतत्व द्वारा अधिक प्रभावित था—समाज पुरुष प्रधान था। माँ सारदा का अविर्भाव एक नारीप्रधान विश्व के प्रारंभ का संकेत करता है। आज हम विश्व में सर्वत्र नारीजाति के जागरण एवं विकास के लक्षण देखते हैं लेकिन यह आवश्यक है कि नारी अपने अन्तर्निहित मातृत्व को विकसित करे, पुरुषों का अनुसरण कर पुरुषोचित गुणों का विकास करने का प्रयास न करे। इसी सत्य को प्रदर्शित करने के लिए माँ सारदा प्रधानतः सहिष्णुता, लज्जाशीलता, क्षमाशीलता, दया, प्रेम, कोमलता आदि मातृ सुलभ गुणों को अपने जीवन के माध्यम से विशेष रूप में अभिव्यक्ति कर गयी हैं। अगर यह न हुआ और नारियाँ, पुरुषों के साथ प्रतिस्पर्धा करने लगें

तो एक सुखकर एवं संतुलित समाज की स्थापना का प्रयास व्यर्थ हो जायेगा। माँ सारदा के जीवन एवं संदेश के एक पक्ष विशेष के अध्ययन की सहायता से मातृत्व का व्यावहारिक रूप समझा जा सकता है।

यह संकेत दिया जा चुका है कि स्वामी विवेकानन्द एवं माँ सारदा, श्री रामकृष्ण के भावों के दो परस्पर विरोधी प्रतिरूप हैं। स्वामी विवेकानन्द पौरुषत्व, अनासक्ति, दृढ़ता आदि पुरुषोचित गुणों के मूर्तिमान विग्रह हैं, तो माँ सारदा नारीत्व, प्रेम, कोमलता आदि मातृसुलभ गुणों की प्रतिमूर्ति हैं। स्वामी विवेकानन्द का महान् जीवनोद्देश्य था—श्रीरामकृष्ण के द्वारा प्रदर्शित आदर्शों को संसार के सामने इस तरह प्रस्तुत करना कि बुद्धिवादी समाज उसे समझ सके। उनके आदर्शों के भावनात्मक पक्ष का प्रकाशन माँ सारदा के जीवन का महान् उद्देश्य था। स्वामी जी की वाणी हमारी बुद्धि को प्रभावित करती है, जब कि माँ के उपदेश हृदय को स्पर्श करते हैं। स्वामी जी विचार और तर्क की जिज्ञासा की पूर्ति करते हैं, माँ हृदय की प्यास बुझाती हैं। स्वामी जी नाना युक्ति तर्क के माध्यम से श्री रामकृष्ण के विश्व कल्याणकर विचारों को आधुनिक बुद्धिवादी मानव तक पहुँचाते हैं, माँ सारदा निःशब्द ही अपनी स्नेहदृष्टि से अशान्त मानव के हृदय पर शान्ति का वरिसिंचन करती हैं। यही कारण है कि माँ के लिए बुद्धिमान, मूर्ख, धनी, निर्धन, संत-पापी के भेद नहीं थे, क्योंकि जहाँ तक हृदय की भावना का प्रश्न है, सभी एक हैं, सभी को प्रेम एवं शान्ति की आवश्यकता समान मात्रा में रहती है।

मातृत्व का एक अन्य पक्ष है श्रद्धा विश्वास। इस संदर्भ में भी हम स्वामी विवेकानन्द एवं माँ सारदा के दृष्टिकोण एवं उपदेशों में पार्थक्य पाते है। स्वामी विवेकानन्द सभी बातों को परखने के बाद स्वीकार करते थे। उन्होंने उपदेश भी यही दिया है कि किसी बात को इस लिए स्वीकार न करो कि वह किसी व्यक्ति विशेष द्वारा कही गयी या पुस्तक विशेष में लिखी है। स्वयं अपनी बुद्धि द्वारा परख कर उसके बाद उसे मानो। इसके विपरीत, माँ सारदा विश्वास पर बल देती हैं। अन्य सभी अवतारों की तरह श्री रामकृष्ण के उपदेशों में भी दो प्रकार के उपदेश हैं। एक तो वे सार्वभौमिक सत्य हैं जो सभी देश काल एवं धर्म के लोगों के लिए उपयोगी हैं यथा सब धर्मों की सत्यता, व्याकुलता के द्वारा ईश्वर के दर्शन की संभावना, कामिनी कंचन त्याग की आवश्यकता इत्यादि। इसके अतिरिक्त उनके संदेश का एक दूसरा पक्ष भी है जिसका उपयोग केवल उनके अनुयायियों के लिए ही होता है। अवतारी महापुरुष सनातन सत्यों का पुनराविष्कार करने के साथ ही साथ अपने व्यक्तित्व की भी इष्टदेव के रूप में प्रतिष्ठा करते हैं एवं उनके भक्त उनकी पूजा कर विशेष लाभान्वित होते हैं। उनके संदेश का प्रथम पक्ष उसे व्यापकता प्रदान करता है, जबकि दूसरा पक्ष उसमें गहराई लाता है। एक ओर स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण के उदार, सर्वजन कल्याणकारी संदेश को देश-विदेश में फैलाया तो दूसरी ओर माँ सारदा ने श्रीरामकृष्ण के अवतारत्व में विश्वास को भक्तों के हृदय में दृढ़ करके रामकृष्ण संघ को गहरी नींव प्रदान की।

स्वामी विवेकानन्द पुरुषार्थ के प्रतिपादक थे। लेकिन माँ सारदा में शरणागति प्रतिपादक उपदेशों का बाहुल्य है। प्रत्येक मानव की अपनी क्षमताएँ एवं असमर्थताएँ हैं। उसमें शक्ति तो है, लेकिन उसकी अपनी सीमाएँ भी हैं। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में सफलता एवं असफलता, शक्ति एवं दुर्बलता दोनों का अनुभव होता है। कुछ लोग स्वभाव से ही अपनी शक्ति के प्रति जागरूक होते

हैं तो अन्य कुछ लोगों को अपनी दुर्बलताओं का बोध अधिक होता है। दोनों ही प्रकार के लोगों के लिए उपाय होना चाहिए, साधना पद्धति होनी चाहिए। स्वामी विवेकानन्द उन लोगों को अधिक प्रभावित करते हैं जिन्हें शक्ति पर अधिक भरोसा होता है। माँ सारदा उनलोगों को शरणागति का पाठ पढ़ाती हैं जो अपनी असमर्थता के बोझ से दबे हैं। ऐसे लोगों के कानों में माँ सारदा की अभय वाणियाँ सदा गूँजती रहती हैं: "सदा याद रखो कि तुम्हारी एक माँ है," "जितना कर सकते हो करो, बाकी मैं करूँगी," "तुम कितना करोगे बेटा, मैं तुम्हारे लिए कर रही हूँ।" इत्यादि।

उपसंहार :—

श्रीरामकृष्ण का मातृभाव था, मातृत्व की स्थापना माँ सारदा के जीवन का महत्वपूर्ण उद्देश्य था। इस कथन का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि माँ सारदा में जगन्मातृत्व का आविर्भाव हो एवं वे जगत के समस्त प्राणियों को अपनी सन्तान समझें। इसका गूढ़ तात्पर्य यह है कि उन सद्गुणों, तत्वों एवं मनोदशाओं का प्रचार, प्रसार एवं विकास समाज एवं व्यक्ति में हो जो नारी जाति, विशेषकर उसके मातृरूप के विशिष्ट गुण हैं। प्रत्येक मानव एवं समाज को अपना स्वयं का अध्ययन एवं परीक्षापरक अवलोकन करके जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि उसमें किस गुण विशेष की कमी है और तब उसे आत्मसात करने का प्रयत्न करना चाहिए। अतः माँ सारदा के जीवन एवं उपदेशों का वर्तमान काल में विशेष महत्व है। माँ सारदा के आविर्भाव से मातृत्व द्वारा प्रभावित एक नये युग का प्रारंभ हुआ है।

●

१८ अक्टूबर, दुर्गाष्टमी के अवसर पर

मधु-कैटभ वध

—स्वामी शशांकानन्द
बेलुड़ मठ

सांख्यमतानुसार त्रिगुणात्मिका माया ही संसार का आदि कारण है। सत्त्व, रज एवं तम, इन तीनों गुणों की साम्यावस्था होने पर प्रलय होता है और वैषम्य से सृष्टि। पुराणों के अनुसार प्रलय और सृष्टि क्रम से आते जाते रहते हैं। प्रलय-पयोधि में जब सृष्टि की सूचना मिलती है तो सर्वप्रथम शेष नाग पर योगमाया में निमग्न सत्त्व-गुणरूपा भगवान् विष्णु दीख पड़ते हैं। उसके बाद सृष्टि की प्रेरणा लिए रजोगुणी ब्रह्मा भगवान् विष्णु की नाभि से उदित होते हैं और फिर तमो-गुणी मधु-कैटभ।

श्री श्री चण्डी में दिया गया यह चित्रण साधक के जीवन में बड़ा महत्त्व रखता है। विश्व ब्रह्माण्ड से संबन्धित यह चित्र क्षुद्र जगत (जीव) में होता है। भाव-समाधि से उतरते हुए श्री रामकृष्ण देव ने महिम द्वारा 'यतिपंचक' शास्त्र की निम्न पंक्ति

का पाठ सुना, "मैं दिव्य जगन्माता हूँ, चैतन्य-स्वरूपा हूँ।" तो वे मुस्कराते हुए बोले, "जो क्षुद्र जगत् (मनुष्य) में है वही विश्वब्रह्माण्ड में भी"। अर्थात् जो कुछ समष्टि जगत् में घट रहा है वही हमारे व्यष्टि जीवन में भी घटता है।

जिस प्रकार प्रलय काल में स्थूल एवं सूक्ष्म जगत् कारणसमुद्र में परिणत हो जाता है, सभी प्राणी अपने-अपने संस्कारों का भण्डार बीज रूप में लेकर कारण जगत् में लीन हो जाते हैं, पृथ्वी, स्वर्ग, नरक, देवता, असुर विलीन हो जाते हैं—रह जाता है अव्यक्त, निष्क्रिय प्रलय-पयोधि और उसमें अनन्त नाग की शैया पर योगनिद्रा में निमग्न भगवान् विष्णु एव पुनः सृष्टि की सूचना उदित होने पर ब्रह्मा जी भगवान् विष्णु की नाभि से निकले हुए पद्म पर प्रकट होते हैं। फिर सृष्टि होती है। प्रलय सृष्टि क्रम से होते रहते हैं। उसी प्रकार जीव स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर में प्रतिदिन आवागमन करता रहता है। जाग्रत अवस्था में तीनों शरीरों में एक साथ विचरण करता है। स्वप्न में सूक्ष्म एव कारण में तथा सुषुप्ति के समय केवल कारण शरीर में ही वास करता है। सुषुप्ति अवस्था में कारण शरीर में स्थित परमात्मा के साथ एक होने पर भी जीव उसे जानता नहीं, देखता नहीं, केवल सुख का अनुभव कर पाता है। क्योंकि 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः' किन्तु जब योगी योग साधना के द्वारा, स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर का अतिक्रमण कर कारण शरीर में प्रवेश करता है तब देह इन्द्रिय मन में लीन होकर अपना कार्य-कलाप बन्द कर देते हैं और फिर जब मन भी कारण शरीर में लीन हो जाता है तब मन के संकल्प-विकल्प, बुद्धि के विचार तथा चित्त की चंचलता शान्त होने पर जीव उस स्थान पर पहुँच जाता है जहाँ उसे प्रलय पयोधि (कारण समुद्र) के ऊपर भगवान् अन्तर्यामी के दर्शन होते हैं।

किन्तु जिस प्रकार ब्रह्मा को देखकर मधु-कैटभ ने उन्हें अपना आसन परित्याग कर अन्यत्र जाने के लिए कहा था, उसी प्रकार व्यष्टि में—कारण शरीर में—अज्ञान और मोह रूपी मधु-कैटभ विराजमान हैं और वे साधक को अन्तर्यामी भगवान् की ओर न जाकर अन्यत्र जाने का आदेश देते हैं अर्थात् सूक्ष्म एवं स्थूल शरीर में लौट जाने का आदेश करते हैं, साधक को संसार की ओर ठेलते हैं।

किन्तु यदि साधक ब्रह्मा जी की भांति अज्ञान एवं मोह रूपी मधु कैटभ का आदेश पालन न कर डटा रहे तो वे साधक की हत्या करने के लिए उद्यत होते हैं। मधु-कैटभ अत्यन्त पराक्रमी एवं शक्तिशाली हैं, भगवान के कर्ण-मैल से उनका जन्म हुआ है भला ये साधक उनके हाथों रक्षा कैसे पाएँ। मधु-कैटभ को परमाचित्त शक्ति स्वरूपिणी देवी की कृपा से स्वेच्छा से मरने का वर प्राप्त हुआ है। अब साधक क्या करे!

श्री श्री चण्डी में वर्णित गाथा में मधु-कैटभ से भयभीत होकर ब्रह्माजी ने प्रभु का स्तव किया। किन्तु योगनिद्रा में निमग्न भगवान उनकी स्तुति न सुन पाये। उसी प्रकार व्यष्टि में भी जब साधक अत्यन्त व्याकुल होकर अन्तर्निहित ईश्वर की स्तुति करता है तो योगनिद्रा में निमग्न प्रभु सुन नहीं पाते। तब वह क्या करे? अभी तक तो योगी अपनी साधना के बल पर कारण समुद्र तक पहुँच गया किन्तु मोह और अहंकार रूपी मधु-कैटभ से बचना उसके लिए असम्भव हो गया। ऐसे समय में ब्रह्माजी की भाँति योगमाया परमा चित्तशक्ति स्वरूपिणी देवी की आराधना ही साधक के लिए एक मात्र उपाय रह गया है।

साधक तब असहाय, निरुपाय भयभीत और कातर हो उठता है। अपनी साधना के बल को

असमर्थ जानकर उसमें दीनता, नम्रता, विनय एवं कोमलता आती है। वह शरणापन्न होकर महाशक्ति की स्तुति करता है। तब वही योगनिद्रा जो भगवती महामाया हैं जिनकी इच्छा से ही अज्ञान और मोह जीव के ज्ञान को आवृत करते रहते हैं और नित्य वस्तु के मिलन में बाधा बनकर अनित्य वस्तु को और प्रेरित करते हैं वही देवी जीव के शरणागति-भाव से प्रसन्न होकर अज्ञान और मोह के नाश के लिए योगनिद्रा में निमग्न भगवान् विष्णु के नेत्रों से बहिर्गत होती हैं अर्थात् अन्तर्निहित चैतन्य ब्रह्म स्वरूप अभिव्यक्त हो जाता है और तब अज्ञान और मोह रूपी मधु-कैटभ का वध होता है क्योंकि उसकी ज्योति से अज्ञानांधकार एवं मोह विलीन हो जाते हैं।

भगवान् विष्णु की योगनिद्रा महामाया द्वारा ही संसार के समस्त जीव मोहाच्छन्न हुए हैं। "महामाया हरेश्चैतत्तया संमोहते जगत्।" किन्तु यही महामाया यदि प्रसन्न हो जाएं तो मनुष्य को मुक्ति लाभ के लिए अभीष्ट वर देती है।— "सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।"

●

सद्य प्रकाशित

नवीन प्रकाशित

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार

मृत्यु होने पर मनुष्य कहाँ जाता है? किस अवस्था में रहता है? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं परलोक में जीव का अवस्थान किस प्रकार रहता है? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आन्दोलित करती रहती है। इन सभी की मीमांसा स्वामी अभेदानन्द महाराज ने अपने ग्रन्थ "मृत्यु के पार" में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है। इहलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपर्युक्त प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर इस ग्रन्थ में उन्होंने दिया है। मानव एवं प्राणीमात्र की आत्मा का विनाश नहीं है, किन्तु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास की ही प्रतिछवि है। मनुष्य जन्म-मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्मसत्ता की उपलब्धि करता है।

डिमाई साईज, पृष्ठ संख्या १६८ :

मूल्य—बास रुपया।

प्रकाशक :

श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ

१९-बी, राजाराजकृष्ण स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००६

परमहंस श्रीरामकृष्ण देव एवं जगज्जननी माँ सारदा

—श्री उमेश चन्द्र
दुमका (बिहार)

परमहंस श्री रामकृष्ण देव की लीला-सहचरी के रूप में माँ सारदा का आगमन हुआ था। श्री रामकृष्ण देव ने माँ सारदा का ही लीला-सहचरी के रूप में संधान किया। अपनी आध्यात्मिक साधना में लीन श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में भौतिक जीवन का कोई मूल्य ही नहीं था। वे सतत् जगन्माता के भावानन्द में प्रेम विह्वल रहा करते। अपनी साधना के पूर्व के वर्षों में उनका जीवन पूर्णतया भावमय हो चुका था। "निरन्तर एक आनन्द के नशे में वे विभोर रहते थे। बाहरी उच्छ्वास उतना नहीं था। विरह का उस प्रकार मर्मभेदी क्रन्दन भी नहीं था, मानो अब परिपूर्णता के आनन्द से उनका मन लबालब भर गया हो। उसमें न तरंग थी न स्फीति। वह था—प्रशान्त समुद्र के समान शान्त। जगन्माता के विविधदर्शनों से वे आत्मस्थ थे।"[1] अपने प्रिय पुत्र की इस स्थिति को देखते हुए चन्द्रमणि देवी ने अपने पुत्र रामेश्वर से परामर्श कर पितृविहीन श्री रामकृष्ण को दक्षिणेश्वर से बुलाया। माँ के प्रेमानन्द में निमग्न श्री रामकृष्ण के इस भावावेश की प्रचलित कथाओं ने उन्हें आशंकाओं से जकड़ दिया। माता चन्द्रमणि ने अपने पुत्र रामेश्वर से एकान्त में यह निश्चय किया कि अब गदाई की शादी कर ही दी जाय ताकि उन्माद की यह स्थिति पूर्णतया शान्त हो जाय। गुप्त रूप से वे योग्य कन्या की खोज में अपने आदमी भेजने लगीं। उन्हें अभी भी यह आशंका घर कर रही थी कि कहीं उनका गदाई शादी से इन्कार न कर दे। बंगाल के इस दीन-हीन परिवार में सुन्दर लड़की क्योंकर मिल पायेगी। कन्या जितनी बड़ी और सुन्दर मिलेगी दहेज की रकम उसी अनुपात में देनी होगी। श्री रामकृष्ण से अपनी माता का यह विषादपूर्ण रूप छिपा न रह सका। श्री रामकृष्ण ने एक दिन उनसे कहा—"जहाँ-तहाँ खोजना व्यर्थ है। जयरामवाटा के रामचन्द्र मुखोपाध्याय के घर में कन्या देवनिर्दिष्ट है, देखो जाकर।"[2] उनके कहने के अनुरूप ही खोज की गयी। माँ सारदा वह बालिका थीं केवल छः वर्ष की, जिनके साथ २४ वर्षीय श्री रामकृष्ण का विवाह पक्का हुआ। दहेज के रूप में तीन सौ रुपये की राशि दी गयी। यह विधाता की पूर्व नियोजित इच्छा का निरूपण था कि मई १८५९ के शुभ लग्न में श्री रामकृष्ण एवं सारदामणि का विवाह सम्पन्न हुआ।

यह सार्वजनीन है कि श्री रामकृष्ण ने सारदामणि को जीवन संगिनी के रूप में स्वीकार किया और गार्हस्थ्य-धर्म में प्रवेश किया। उनके दाम्पत्य जीवन की यह विशेषता थी कि उन्होंने अपने

१—श्री रामकृष्ण और श्री माँ—स्वामी अपूर्वानन्द पृष्ठ ७५
२—श्री रामकृष्ण और श्री माँ—स्वामी अपूर्वानन्द—पृष्ठ ७६

जीवन-संगिनी को अपना सम्पूर्ण प्रेम, श्रद्धा एवं विश्वास दिया। दैहिक सम्बन्ध-रहित होकर भी पुरुष और नारी का प्रेम इतना घनीभूत हो सकता है एवं दाम्पत्य जीवन इतना मधुर हो सकता है—यह अलौकिकता हमें श्री रामकृष्ण के ही जीवन में मिलती है।

माँ सारदा श्री रामकृष्ण की लीला-सहचरी के रूप में अवतीर्ण हुई थीं। उनके जीवन काल में हमें उनके विभिन्न रूपों के दर्शन होते हैं, किन्तु एक आदर्श पत्नी, महामानवी एवं जगन्माता का उनका रूप विलक्षण दैवी शक्ति का ही परिचायक है।

आदर्श पत्नी :

भारतीय वाङमय में पति की सेवा एक आदर्श पत्नी का धर्म माना जाता है। माँ सारदा देवी ने भारतीय आदर्श की इस परम्परा को अपने जीवन में पूर्ण रूपेण अपनाया। दक्षिणेश्वर में साधना-रत अपने पति की सेवा ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य था। माँ सारदा की दिनचर्या का जीवन्त वर्णन योगिन माँ ने इस प्रकार किया है।"

"श्री माँ चार बजे प्रातःकाल शौच-स्नानादि कर ध्यान में बैठतीं, क्योंकि ध्यान करने की ठाकुर की आज्ञा थी। इसके पश्चात अन्य कार्यों को पूरा कर वे पूजा के लिए बैठतीं। पूजा, ध्यान और जप में लगभग डेढ़ घण्टा समय लगता था।

साढ़े दस, ग्यारह बजे के भीतर ठाकुर भोजन करते थे। जब वे स्नान करने जाते, तब माँ जल्दी उनके लिए पान ठीक करतीं और नजर रखतीं कि वे स्नान करके लौटे या नहीं।

अकेले श्री माँ ही भोजन करते समय ठाकुर की भाव - समाधि को रोक सकतीं थीं, दूसरे किसी से यह सम्भव नहीं था। ठाकुर के भोजन करने के पश्चात् श्री माँ अपने मुँह में थोड़ा कुछ डाल कर पानी पी लेतीं। फिर पान लगाने बैठतीं। पान लग जाने पर गुनगुनाकर कुछ गातीं—बड़ी सावधानी से ताकि कोई सुन न ले।

इसके पश्चात रात को भोजन बनातीं सबको खिला-पिलाकर तब स्वयं भोजन करतीं फिर कुछ विश्राम करके सोने को जातीं।"[४] माँ सारदा की यह दिनचर्या परिचायक है कि माँ का जीवन एक कर्मठ भारतीय नारी की तरह था जिसके जीवन में पति-सेवा एवं पति साहचर्य एक अनमोल निधि थी।

महा मानवी :—

श्री रामकृष्ण की जीवन-संगिनी के रूप में माँ ने पति-प्रेम के मधुर एव निष्कलुष आनन्द की ही अनुभूति नहीं की वरन् उन्हें अलौकिक आध्यात्मिक शक्ति भी प्राप्त हुई। परवर्ती काल में श्री रामकृष्ण की मृत्यु के पश्चात माँ ने असंख्य भक्तों को अपनी करुणा, वात्सल्य एवं अगाध प्रेम-पीयूष से आवेष्टित रखा "जगत को मातृभाव की शिक्षा देने के लिए ही तो श्री सारदा देवी ने शरीर धारण किया था। वे माँ पहले थीं-गुरु बाद में। उनके मातृभाव ने गुरुभाव का दबा दिया था। जो "माँ" कह कर पुकारता था, श्री सारदा देवी उसी को अपनी स्नेहमयी गोद प्रदान करती थीं। वहाँ सुश्री, कुश्री, पुरुष-स्त्री, बालक-बालिका सबल-दुर्बल का कोई भेद नहीं था।

यही उनका गुरु रूप था। —उनका मातृस्नेह दिव्य था।"[५] माँ के पास निरन्तर लोग आया करते।

---

३ —श्रीमाँ सारदा देवी-स्वामी गम्भीरानन्द पृष्ठ ९५

४ —माँ सारदा-स्वामी अपूर्वानन्द, पृष्ठ-४३-४४

५—श्री रामकृष्ण और श्रीमाँ—स्वामी अपूर्वानन्द, पृष्ठ २४९-५०

कुशिक्षा के विषाक्त ही नहीं वरन् विभिन्न कामनाएँ ले लोग उनके पास आते। यह माँ की विशेषता थी कि उन्होंने किसी को निराश नहीं किया।

"अनेक बार उन्होंने दूसरों के शारीरिक रोग अपने शरीर में ले लिये थे। उनकी दया का कोई अन्त नहीं था। कोई सीमा, नहीं थी। सन्तानों को जिस समय जहाँ भी वेदना होती वहीं वे शान्ति का हाथ फेरकर उसे दूर कर देतीं। किसी का भी दुःख देखकर माँ का मन रो उठता। आकुल होकर वे आगन्तुक की अपूर्णताओं को पूर्ण कर देतीं—अपने कोमल हाथ से वे उसकी आँखों का जल पोंछ देतीं।"[6]

माँ ने कितनों की पीड़ा दूर की, कितनों को रोग मुक्ति दी और कितनों की मनोवांछित कामनाएँ पूर्ण कीं इसका कोई इतिहास उपलब्ध नहीं, फिर भी उदाहरणस्वरूप कुछ घटनाएँ माँ के महान व्यक्तित्व और उदारमना जीवन की झाँकियाँ प्रस्तुत करती हैं।

कामारपुकुर में माँ के निवास के सामने के मैदान में एक श्रमिक बस्ती थी। उस बस्ती की एक महिला अपने रोगग्रस्त बच्चे को लिए माँ के आशिर्वाद के लिए आ पहुँची। माँ का हृदय दया और करुणा से भर उठा। दो बेदाने और कुछ अंगूर-ठाकुर का प्रसाद बनाकर उसके हाथों में देते हुए बोलीं—"अपने रोगी बच्चे को खिला देना"। वह श्रमिक महिला माँ का आभार प्रदर्शित करती हुई चली गयी मानो उसके आनन्द की सीमा न रही।

एक दिन दो बहुएँ आयीं। वे दोनों निःसंतान थीं। उन्होंने अपने मन के अभाव को गुप्त रूप से माँ के समक्ष रखा। माँ का मन दया से अभीभूत हो उठा। माँ ने उनकी मनोवांछित अभिलाषा पूर्ण कर दी। उन्होंने कहा—"ठाकुर से प्रार्थना कर मन की बात कहना।—दीन भाव से रोते-रोते उनसे अपने हृदय की बातें कहना देखोगी, वे तुम्हारी गोद भर देंगे।" माँ की दया और करुणा से उनकी मनोवांछित इच्छा पूर्ण हुई।

एक दिन एक मेम ने आकर अपनी लड़की के कठिन रोग से ग्रस्त होने की बात कही। मेम की व्याकुलता से माँ का हृदय दयार्द्र हो उठा। कुछ प्रसादी फूल, बिल्व-पत्र हाथ में लेकर कुछ देर के लिए उन्होंने आँखें बन्द कीं और ठाकुर की ओर देखकर फूल, फल, बिल्व-पत्र मेम को देते हुए उन्होंने आशीर्वचन दिया "अपनी लड़की के सिर में छुआ देना"। माँ के आशीर्वाद से वह लड़की रोग-मुक्त हो गयी।

जगज्जननी :—

माँ सारदा ने इस धराधाम पर एक आदर्श पत्नी, भक्त वत्सला, करुणा की देवी के रूप में लीला की। लज्जाशीला माँ अपने पति श्री रामकृष्ण देव के समक्ष भी घूँघट में आवेष्टित रहती थीं। लज्जारूपिणी माँ के रूप में साक्षात जगज्जननी का आविर्भाव हुआ है यह तथ्य श्री रामकृष्ण एवं उनके अंतरंग भक्तगण ही जान पाये थे। श्री रामकृष्ण माँ की दैवी शक्ति से परिचित थे, इसी कारण कभी-कभी भक्तों के बीच उन्हें यह कहते पाया गया था, "—रूप रहने से कहीं अशुद्ध मन से देखने पर लोगों का अकल्याण न हो, इसलिए इस बार रूप ढककर आना हुआ है। ... वह सारदा है, ज्ञानदायिनी है। संसार को ज्ञान देने के लिए आयी है।" श्री रामकृष्ण देव ने षोड़षोपचार से श्री माँ की पूजा की थी। ईस्वी सन १८७२ की ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को फलहारिणी

6—श्री रामकृष्ण और श्री माँ-पृष्ठ २५३

देवी के पूजन के दिन श्री रामकृष्ण ने त्रिपुरासुन्दरी के रूप में माँ सारदा की पूजा कर उन्हें साक्षात् देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया। माँ सारदा की पूजा मातृभाव-साधना की पराकाष्ठा थी।

"भक्तगण माँ को साक्षात् देवी के रूप में स्वीकार करते थे। उनकी अलौकिक करुणा, पवित्रता, शरणागतवत्सलता, मातृ-भाव का परिचय पाकर उनके आश्रित भक्तगण उन्हें प्रत्यक्ष देवी समझकर उनका पूजन करते एवं अपने हृदय का भक्तिअर्घ्य अर्पित करते थे।

श्री माँ ने भी परवर्ती काल में परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से अपने दैवी रूप को स्वीकार किया है। एक दिन जयरामवाटी में भगत महाराज माँ के घर के बरामदे में बैठे थे और माँ वहाँ झाड़ू दे रही थीं। इसी समय भिखारी ने आवाज लगायी, "माँ, कुछ भीख मिले।" श्री माँ अचानक बोल पड़ी, "मैं अनन्त हाथों से कम करके भी पूरा नहीं कर पाती हूँ।"

श्री रामकृष्ण के देहत्याग के बाद शिबु दादा माँ के साथ कामारपुकुर से जयरामवाटी आ रहे थे। शिबु दादा ने सहज भाव से पूछा, 'तुम कौन हो बता सकती हो? माँ ने उत्तर दिया "मैं कौन हूँ' मैं तेरी चाची हूँ।" शिबु दादा ने जिद की। शिबु दादा के निश्चल और सहज भाव देख माँ ने अपने काली रूप को स्वीकार किया।

परवर्ती काल में ईश्वरकोटि पार्षद् स्वामी प्रेमानन्द जी ने लिखा था "श्री माँ को भला कौन पहचान सकता है, उनमें ऐश्वर्य का तनिक भी प्रकाश नहीं है। ठाकुर में तो विद्या का ऐश्वर्य था, पर माँ में तो उसका लेशमात्र भी नहीं है। कैसी अपूर्व महाशक्ति है! जय हो, माँ तुम्हारी जय हो! जिस विष को हम स्वयं पचा नहीं सकते, उसे माँ के पास भेज देते हैं। और माँ सबको अपनी गोद में खींच लेती हैं। अनन्त शक्ति, अपार करुणा! जय हो, माँ की जय हो! स्वयं ठाकुर को भी ऐसा करते नहीं देखा। वे भी कितना ठोक-पीट कर, देख-सुनकर शिष्य बनाते थे। पर यहाँ माँ के पास क्या देखता हूँ, यहाँ की बात ही निराली है। सब अद्भुत व्यापार है। वे सब को आश्रय दे रही है, सभी को ग्रहण कर रही हैं। जय, जय, जय हो माँ!!"[८]

७—माँ सारदा—स्वामी अपूर्वानन्द, पृष्ठ ४
८—माँ सारदा-स्वामी अपूर्वानन्द, पृष्ठ ९९-१००

"यदि शान्ति चाहते हो तो किसी का दोष-दर्शन नहीं करना। सबको अपना बनाना सीखो। कोई पराया नहीं है। सभी अपने हैं।"

—श्रीमाँ सारदा

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

'कामनाएँ किस प्रकार जाती हैं ?'—एक अन्य भक्त के इस प्रश्न के उत्तर में लाटू महाराज ने कहा था—"अपने पास ठाकुर का एक चित्र रख लेना। कामनाओं के आने पर उस चित्र को ही आँखों के सामने रखना। ऐसा करने पर इन्द्रियाँ इधर-उधर नहीं भटक सकेंगी। उस चित्र की ओर देखते-देखते तुम्हारे मन की सारी कामनाएँ चली जाएँगी। समझे न ?"

एक अन्य भक्त को उन्होंने बताया था—"मन की कामना-वासना क्या ऐसे ही चली जाती है ? उनके (गुरु या इष्ट के) ऊपर मन लगने पर ही ये जाती हैं। उन पर मन लगा रहना ही असल बात है। जिसका मन रहता है, उसे फिर क्या चिन्ता ? अरे ! वे ही तो सद्बुद्धि देकर तुम्हारी कामनाओं की दिशा घुमा देंगे। उन पर निर्भर करो, उनमें विश्वास लाओ, देखोगे कि वे ही सद्बुद्धि की व्यवस्था कर देंगे। यदि तुम हृदय से उनकी शरण ले सको तो वे तुरन्त ही तुम्हारा सारा बखेड़ा दूर कर देंगे। परन्तु मन-मुख को एक करके उनकी शरण जाना होगा।

भक्त—महाराज ! जिसे देखा भी नहीं, उसके ऊपर कैसे निर्भर कर सकूँगा ? उनके शरणागत होने का उपाय तो हमें ज्ञात नहीं। सिर्फ इतना ही कहकर चुप बैठने से कि भगवान ! मुझ पर दया करो, मुझ पर कृपा करो, क्या वे हम पर दया करेंगे ?

लाटू महाराज—अरे ! वे तो हर घड़ी दया कर रहे हैं। उन्हीं की दया से तो तुम बचे हुए हो। अच्छा, तुम कहते हो कि उन्हें नहीं जानते, परन्तु उनका नाम तो जानते हो न ! अरे, नाम जानकर ही तो तुम साहब के पास अर्जी भेज देते हो। अर्जी लिखने पर ही तो तुम्हारी साहब के साथ मुलाकात होती है और अर्जी के भीतर तुम क्या लिखते हो ? मुझे अपने काम में लगा लीजिए, आपका काम करके मुझे बड़ी खुशी होगी, आपकी सारी बातें मानकर चलूँगा, आपका सारा काम करूँगा, जो कहेंगे वह सुनूँगा। परन्तु यह सब तो तुम साहब को देखने के पहले ही लिख देते हो। बोलो ऐसा करते हो या नहीं ?

भक्त—हाँ महाराज ! इसी प्रकार तो हम लोग दरखास्त भेजते हैं।

लाटू महाराज—भेजते हो न ! भगवान के पास भी उसी प्रकार दरखास्त भेजो। परन्तु इस दरखास्त को लिखकर नहीं भेजना पड़ता, अपने मन के कागज पर लिखकर भगवान को बताना पड़ता है। मन के कागज पर पहले नाम का मसविदा तैयार करना पड़ता है। नाम के मसविदे में गल्ती होने से चिट्ठी नहीं पहुँचेगी, समझे न ? उसी तरह लिखते रहो—'भगवान ! मैं आपका नाम न भूलूँ। मैं आपकी शरण लेता हूँ। मुझे अपने काम में लगा लीजिए, काम में लगाकर मेरा सारा बखेड़ा मिटा

दीजिए। सारा संशय दूर कर दीजिए। आप मेरे मालिक हैं, मेरे गुरु हैं, मेरे माँ बाप सबकुछ हैं। मैं आपकी सन्तान हूँ। आप मुझे उसी पथ पर ले चलिए जिसमें मेरा कल्याण हो। मेरे द्वारा आप अपना कार्य करवा लीजिए। परन्तु आप मुझे अपनी माया में मत भुलाइएगा। प्रभो! मैंने तो आपको देखा नहीं है, केवल आपका नाम ही सुना है। दया करके मुझे अपना बना लीजिए।' इस प्रकार हर रोज कहते जाना होगा। कहते-कहते एक दिन उनकी कृपा दृष्टि पड़ेगी। एक बार उनकी दृष्टि हो जाने पर फिर चिन्ता की कोई बात नहीं। तब वे ही तुम्हें चलाएंगे। क्या करना होगा और क्या नहीं, सब वे ही बोल देंगे।

एक दूसरे दिन उन्होंने एक भक्त को कहा था —:'देखो! अहंकार दूर हुए बिना कामनाएं नहीं जातीं। पहले विचार के द्वारा अहंकार को मिटा डालो। इसी से सारी गड़बड़ दूर हो जाएगी।"

भक्त—अहंकार कैसे जाएगा, महाराज?

लाटू महाराज—मैं बड़ा हूँ, इसी भाव से तो अहंकार सिर उठाता है। उस 'मैं' को ही छोटा करके देखते रहो। अहं भाव आते ही सोचना—अरे! मुझसे भी बड़े बड़े कितने लोग पड़े हैं, मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूँ। मेरी क्या क्षमता है? संसार में तो मैं अपनी शक्ति से आया नहीं। भगवान ही दया करके मुझे यहाँ लाये हैं। संसार में उन्होंने ही मुझे लगाया है, मैं उनके संसार में काम कर रहा हूँ। मेरे जैसे पराधीन व्यक्ति को अहंकार नहीं शोभता। इस प्रकार विचार करने से ही अहंकार चला जाता है। समझे?

परवर्ती काल में वे अपने भक्तों को इसी तरह के उपदेश देते थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे अपने साधना काल में इन्हीं का पालन करके कामना और आसक्ति पर विजय पाने में, इनकी उपयोगिता के बारे में निश्चित हुए थे। क्योंकि सच्चे साधुसंन्यासी अपनी साधना से प्राप्त अनुभवों से ही भक्तों को साधना सम्बन्धी संकेत दिया करते हैं। आम तौर पर वे लोग साधना के बारे में अपने निजी अनुभव के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहते। इसीलिए परमहंस देव ने उन्हें क्या कहा था, इस विषय में यद्यपि हम निश्चित रूप से कुछ नहीं जानते ('दिनरात उन्हें भूलना मत' केवल इस उपदेश के अतिरिक्त), तथापि साधना सम्बन्धी उपर्युक्त चर्चा से हम अनुमान लगा सकते हैं कि तपस्वी लाटू 'नामजप' के द्वारा ही अपनी कामनाओं पर नियन्त्रण पाने में प्रयासी और जयी भी हुए थे।

लाटू महाराज ने नाम को पकड़कर ही आसक्ति-जय की तपस्या की थी। नाम को पकड़ रखने के बावजूद कामनाओं ने उन्हें तरह-तरह से तंग एवं प्रलोभित किया था। इस सम्बन्ध में हमने कई प्रसंग सुने हैं।

'जानते हो! दक्षिणेश्वर में एक दिन तो आसक्तियों ने मुझे ऐसा तंग किया कि उनके पास जाकर ही मेरी रक्षा हुई। नाम ले रहा था, पर उस दिन नाम में मन ही नहीं लगा। उनके पास जाते ही वे ठीक समझ गये, बोले, 'वे तो आती जाती रहेंगी, पर नाम को मत छोड़ना।' "

एक अन्य दिन की बात है। उस दिन भी आसक्ति के तीव्र प्रलोभन से तपस्वी लाटू की विचार और विवेकशक्ति बारम्बार स्तब्ध और निस्तेज हो रही थी। उस समय ठाकुर ने स्वयं आकर उनकी रक्षा की थी। इस प्रसंग को हमने गोपाल दादा (स्वामी अद्वैतानन्द) से सुना है—"हम लोगों में लाटू ही सर्वाधिक सरल था। वह अपनी दुर्बलताओं की बात स्पष्ट रूप से बता देता था। जो बातें लोग दूसरों को नहीं बताना चाहते वे भी

उन्हें बताने में लाटू हिचकता नहीं था। एक दिन आसन से उठने के बाद लाटू का मन बड़ा दुःखी हो गया था। देखता हूँ—लाटू केवल रोता जा रहा है और कुछ बुदबुदा रहा है, परन्तु क्या कह रहा है, कुछ समझ में नहीं आता। उसी समय वे (ठाकुर) आ पहुँचे। तब लाटू का रुदन और भी बढ़ गया। ठाकुर ने उससे कहा, 'देख! और भी निर्जन में आसन लेकर बैठना। ऐसे स्थान पर आसन लगाना कि जहाँ महिलाओं की नजर तक न पहुँचे।"

दक्षिणेश्वर में और भी एक बार तपस्वी लाटू आसक्ति के द्वारा अत्यन्त उत्पीड़ित हुआ था। उस बार एक अशरीरी वाणी ने उनकी रक्षा की थी। उन्होंने अपने मुख से जो कहा था वही हम उद्धृत करते हैं—"जानते हो! मुझे ठीक सुन पड़ा कि मानों कोई मुझसे कह रहा है, 'तू उनकी सन्तान है न!' तब मन में बड़ा बल आया, मन का सारा मोह न जाने कहाँ बह गया! उसके काफी देर बाद वे हँसते-हँसते आकर मुझसे कहने लगे—'जा बेटा! आज खूब बच गया।'"

लाटू महाराज के साधक जीवन में ऐसी घटनाएँ अनेकों बार हुई हैं। अनेकों बार उन्होंने अशरीरी वाणी सुनी थी और अशरीरी रूप देखे थे। वे सब घटनाएँ दक्षिणेश्वर में नहीं हुई थीं, अतः हम उन्हें यहाँ सन्निविष्ट नहीं करेंगे।

ठाकुर की बात पर अटूट विश्वास रखकर लाटू ने दृढ़ निष्ठा के साथ ब्रह्मचर्यव्रत पालन किया था। आम तौर पर लोग वीर्यरक्षा अथवा बिन्दु-स्खलन-रोध को ही ब्रह्मचर्य व्रत का महान उद्देश्य कहा करते हैं। परन्तु ठाकुर ने किसी को इस उद्देश्य से ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने का उपदेश दिया हो, ऐसा तो हमने नहीं सुना। 'सर्वदा ब्रह्म शक्ति में वास कर रहा हूँ'—इस बोध में प्रतिष्ठित होने को ही उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत की प्रमुख साधना बतायी थी। नाम की शक्ति से ही वह बोध प्रतिष्ठित होता है। इसीलिए लाटू नित्य नाम-स्मरण के द्वारा अपने ब्रह्मचर्य व्रत के पालन में लग गये थे।

एक दिन ठाकुर ने ब्रह्मचारी लाटू से पूछा—'तू क्या सोच रहा है बोल तो?' उसी दिन उन्होंने राखाल महाराज से भी वही प्रश्न किया था। राखाल महाराज ने अपनी बात कहते-कहते फिर तपस्वी लाटू के बारे में भी निम्नलिखित बातें कही थीं—'ठाकुर की वह बात सुनकर पहले तो लाटू चुप रहा। फिर जब ठाकुर ने दुबारा उससे वही प्रश्न किया तो लाटू ने उन्हें बता दिया कि वह केवल भगवान का नाम ही लेता रहता है। लाटू की बात पर वे बोले—'अरे! केवल नाम लेने से क्या होगा रे? नाम के साथ नामी का ध्यान-धारणा भी करना।'"

लाटू ने किस प्रकार ध्यान-धारणा का अभ्यास किया था उसका परवर्ती अध्याय में विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

इस समय उनके तपस्वी-जीवन के बारे में जो अन्य कुछ प्रसंग मैंने सुन रखे हैं, उन्हीं को यहाँ लिपिबद्ध करता हूँ। आहार निद्रा मैथुन—इन तीन जैव संस्कारों से मुक्त होने के लिए तपस्वी लाटू को जैसी कठोर तपस्या करनी पड़ी थी, अपने अभिमान और अहंकार को दूर करने के लिए भी उन्हें वैसा ही कठोर प्रयास करना पड़ा था। अभिमान और अहंकार साधना के परम शत्रु हैं। (लगता है कि जैव संस्कार भी उतने बड़े शत्रु नहीं हैं) उसी अभिमान और अहंकार को विसर्जित करने के लिए ठाकुर ने उन्हें विविध उपदेश दिये थे।

एक दिन ठाकुर ने उनसे कहा—'अरे! भिक्षा के अन्न से अभिमान और अहंकार दूर होता है।' ठाकुर की यह बात सुनकर लाटू के मन में

भिक्षाव्रत ग्रहण करने का संकल्प उठने लगा। कई दिन उनके मन में इच्छा हुई कि ठाकुर की अनुमति लेकर भिक्षाटन को निकलूं, परन्तु न जाने क्यों ठाकुर को वह बात कहने का साहस लाटू नहीं जुटा पाता था। आखिरकार एक दिन ठाकुर ने स्वयं ही लाटू से भिक्षा माँग लाने को कहा। उस दिन पूर्वाह्न में ही भिक्षा के लिए जाकर लाटू दोपहर के बाद दक्षिणेश्वर वापस लौटा। भिक्षा में प्राप्त अन्न का परिमाण काफी अधिक देखकर ठाकुर ने कहा—'तुझे जितनी आवश्यकता है उतना ही लाना। अधिक मत लाना। भिक्षान्न का संचय नहीं करना चाहिए।'

और भी एक दिन की बात, जैसा मैंने सुना है, लिपिबद्ध करता हूँ—'एक दिन ठाकुर ने मुझे और राखालबाबू को भिक्षा माँग लाने को कहा। जाते समय ठाकुर ने कह दिया—कोई गाली देगा, तो कोई आशीर्वाद देगा और कोई पैसे देगा—तुमलोग सब लेना। पहले तो एक आदमी ने हमें भिक्षा माँगते देखकर भगा दिया। वह बोला—'ऐसे मुस्तण्डे लड़के होकर भिक्षा माँगते हो? काम करके नहीं खा सकते?' राखालबाबू तो यह डाँट सुनकर विमर्ष हो गये। मैं उन्हें जितना ही कहता कि ठाकुर ने तो पहले ही सब बातें समझा दी थीं, हमें सब स्वीकार करने को कहा था पर राखाल बाबू को बड़ी ही लज्जा आ रही थी। अन्त में मैंने कहा—'घबराते क्यों हैं? चलिए 'दूसरे के घर चलें।' उसके बाद हम एक विधवा के घर भिक्षा करने को गये। उस महिला ने कहा—'तुमलोग कितना कष्ट उठाकर भिक्षा माँग रहे हो बेटा? तुम्हें क्या अभाव है?' तब मैंने उसे सबकुछ बताया। इस पर खूब आनन्दित होकर उसने हमें एक चवन्नी दी और सूर्यनारायण की ओर मुख करके हमें खूब आशीर्वाद दिया—'तुम लोग जिस उद्देश्य से निकले हो, भगवान तुम्हारी आशा पूर्ण करें।' उसके बाद हम और भी कई घरों में गये। उन लोगों ने हमें चावल और पैसे दिये। वह सब लाकर हमने उनके (ठाकुर के) सामने रख दिया। ठाकुर ने पूछा—'बोल, आज तू ने कैसे भिक्षा की?' तब मैंने उन्हें सब कुछ कह सुनाया। उस महिला की बात सुनकर वे बोले—'उसने ठीक ही कहा। देख! यहाँ के (मेरे) साथ सूर्यनारायण का योग है'।"

एक दिन एक भक्त ने पूछा था—'महाराज! भिक्षा के अन्न को ठाकुर इतना पवित्र क्यों कहते थे? जो मेहनत का खाता है और जो भिक्षा करके खाता है, उनमें से कौन ज्यादा शुद्ध अन्न ग्रहण करता है—बताइए न महाराज?'

लाटू महाराज—'अरे! जो मेहनत से कमाकर खाता है, वह यदि किसी का दासत्व न करे तो वही अन्न बड़ा शुद्ध है। उसके बाद भिक्षा के अन्न को शुद्ध समझना। नौकरी की अपेक्षा भिक्षा माँग कर खाना अच्छा है। कारण यह है कि नौकरी करने से दूसरे की इच्छानुसार कार्य करना पड़ता है। भिक्षा माँगने वाले को अपनी स्वाधीनता रहती है। स्वाधीन पेशा सबसे अच्छा है। भिक्षा का अन्न शुद्ध क्यों है, जानते हो? एक ओर तो जो भिक्षा देता है, उसे पुण्य होता है; और दूसरी ओर जो भिक्षा ग्रहण करता है, वह अपना मान-अपमान लोक लज्जा आदि सब त्यागने की शिक्षा पाता है। इसीलिए तो वे माधुकरी के अन्न को साधन-भजन का सहायक बताते थे।

(क्रमशः)

चार महावाक्य—चार अवस्थाएँ

—ब्रह्मचारी चन्द्रकान्त
रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर

चार वेदों की तथा उनमें लिखित चार महावाक्यों की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की गयी है। उदाहरणार्थ, ब्रह्माजी के चार सिर माने चार वेद हैं। या भगवान् श्री दत्तात्रेय के चार कुत्ते माने चार वेद हैं। इत्यादि, इत्यादि।

यहां पर हम चारों महावाक्यों को साधना के क्रमविकास की अवस्था की दृष्टि से देखने का प्रयास करेंगे।

सर्वप्रथम हम चारों महावाक्यों का निर्देश करें। ये चार महावाक्य निम्न प्रकार से हैं—(१) तत्वमसि (२) अहं ब्रह्मास्मि (३) प्रज्ञांन ब्रह्म (४) अयमात्मा ब्रह्म।

उपर्युक्त चारों महावाक्यों में सर्व प्रथम महावाक्य है—"तत्वमसि"। यह महावाक्य सामवेद के अन्तर्गत छान्दोग्य उपनिषद् में आता है। तत्वमसि का अर्थ है 'तुम वही हो"। इस वाक्य को उपदेश-वाक्य के नाम से पुकारा गया है। इसकी व्याख्या के रूप में हम यों कहेंगे कि शिष्य जब गुरु के पास जाता है, तो गुरु शिष्य को सर्वप्रथम सर्वोच्च सत्य के सम्बंध में उपदेश देते हैं कि तुम वही हो" (Thou Are That) अर्थात् तुम स्वरूपतः ब्रह्म ही हो। इसे हम साधना की अवस्था में सर्वप्रथम अवस्था कहेंगे, जिसमें गुरु शिष्य को उपदेश-वाक्य द्वारा उपदेश देते है।

दूसरा महावाक्य है—"अहं ब्रह्मास्मि'। यह महावाक्य यजुर्वेद के अन्तर्गत बृहदारण्यक उपनिषद् में आता है। इस वाक्य का अर्थ है 'मैं ब्रह्म हूँ"। इसे अभ्यास-वाक्य या साधना-वाक्य के नाम से पुकारा जाता है। इसकी व्याख्या में हम यों कहेंगे कि साधना की दूसरी स्थिति में गुरु ने शिष्य को अभ्यास वाक्य "अहं ब्रह्मास्मि" द्वारा अभ्यास करने का आदेश दिया। साधक इस वाक्य का वारंवार उच्चारण करता है तथा इसके अर्थ की भावना करता है। इस प्रकार यह अभ्यास की अवस्था साधना की दूसरी अवस्था है।

तीसरा महावाक्य है—"प्रज्ञानं ब्रह्म"। यह महावाक्य ऋग्वेद के अन्तर्गत ऐतरेय उपनिषद् में आता है। इस वाक्य का अर्थ है कि ज्ञान की अनुभूति ही ब्रह्म है। यहां पर प्रज्ञान का तात्पर्य है ज्ञान की अनुभूति एवं अनुभूत ज्ञान।

इस महावाक्य को लक्षण-वाक्य के नाम से पुकारा गया है। इसकी व्याख्या के रूप में हम यों कहेंगे कि साधक ने जब सर्व प्रथम श्री गुरु के उपदेश वाक्य से उपदेश प्राप्त किया और साधना या अभ्यास-वाक्य के द्वारा अभ्यास शुरू किया, तब यह अभ्यास क्रमशः घनीभूत होने पर उसे अपने अंतःकारण में ज्ञान की किंचित अनुभूति होने लगी। इसी अवस्था को "प्रज्ञान" याने "अनुभूति ज्ञान" की अवस्था मान सकते हैं। पर साधक को अभी भी पूर्ण साक्षात्कार नहीं हुआ है, उसे

सर्वोच्च सत्य का कुछ ज्ञान, कुछ स्पर्श, कुछ झलक ही मिली है। अतः इस अवस्था को हम साधना की तृतीय अवस्था कह सकते हैं।

चौथा महावाक्य है—"अयमात्मा ब्रह्म"। यह महावाक्य अथर्ववेद के अन्तर्गत माण्डूक्य उपनिषद् में आता है। इस महावाक्य का शब्दशः अर्थ है 'यह आत्मा ही ब्रह्म है"। इस महावाक्य को अनुभव-वाक्य या अनुभूति-वाक्य के नाम से पुकारा गया है। इस अवस्था में साधक ने सर्वोच्च सत्य का साक्षात्कार कर लिया है तथा उसे सदा-सर्वदा यही अनुभूति हो रही है कि मैं आत्मा हूँ तथा आत्मा ही ब्रह्म है। यह सर्वोच्च अवस्था है तथा सर्वोच्च अनुभूति है।

इस प्रकार इन चार महावाक्यों की साधना की चार अवस्थाओं के रूप में क्रमविकसित होते हुए, देखा जा सकता है। ज्यों ज्यों साधक उन्नत होता जाता है, त्यों त्यों ये महावाक्य उसके अन्तःकरण में अपने निहित अर्थ को क्रमशः प्रकाशित करते जाते हैं।

●

बोध कथा

साधना और सिद्धि

देवर्षि नारद हाथ में वीणा लिए हरिनाम गाते बजाते मृत्यु लोक, स्वर्गलोक सब जगह घूमते फिरते थे। किसी भी स्थान पर वह बाधा रहित चले जाते थे। एक दिन वह एक वन से होकर जा रहे थे। उन्होंने एक साधक को देखा जो कि संसार को छोड़, रात दिन भगवान की साधना कर रहा था, उसके चारों ओर बाँबी बन गयी थी परन्तु उस ओर उसका कोई ध्यान न था। साधक एकाग्र मन से रात दिन भगवान के चिन्तन में लीन था। नारद की वीणा का स्वर सुनकर उसने आंखें खोलीं और नारद को पहचान लिया। प्रणाम कर के पूछा, "प्रभु आप कहाँ जा रहे हैं"? "हम बैकुण्ठ जा रहे है," नारद ने उत्तर दिया।

बैकुण्ठ नारायण का निवास स्थान है। उनके दर्शन करने ही नारद वहाँ जा रहे थे। साधक नारद जी से कहने लगा, 'आप बैकुण्ठ जा रहे हैं, कृपया भगवान से पूछें कि वह कब मेरे ऊपर दया करेंगे। मुझे कब मुक्ति प्राप्त होगी?

नारद साधक को वचन दे चल पड़े। कुछ आगे जाने पर नारद ने एक और मनुष्य को देखा, जो नाना प्रकार के नाच गान करके भगवान का आवाहन कर रहा था। उसका नाच गाना एक अद्भुत प्रकार का था। नारद को उसने पहचान लिया, खूब भक्ति भाव से प्रणाम करके पूछने लगा, "आज आप कहाँ जा रहे हैं?"

इस मनुष्य के स्वर में एक विशेष मधुरता थी। नारद ने उत्तर दिया कि मैं बैकुण्ठ जा रहा हूँ। सुनते ही वह आनन्द से और भी नाचने लगा और कहने लगा, "प्रभु आप बैकुण्ठ तो जा ही रहे है मेरा भी एक काम करने की कृपा करें। भगवान से पूछें कि मुझे कब मुक्ति देंगे।"

इस साधक को भी वचन दे नारद बैकुण्ठ की ओर चल दिये। कुछ समय के बाद नारद स्वर्ग-धाम से होकर लौटे। लौटते हुए रास्ते में पहले साधक से भेंट हुई। साधक बांबी में बैठ एकाग्र

मन से भगवान की साधना कर रहा था। नारद जी की वीणा की झंकार सुनकर उसने आँखें खोलीं, प्रणाम किया और पूछा कि प्रभु क्या आपने मेरी बात भगवान से पूछी थी ?

'हां पूछी थी,' नारद ने उत्तर दिया। "क्या कहा उन्होंने ? कब देंगे मुक्ति मुझे'' ? बड़ी व्याकुलता से साधक ने पूछा।

नारद ने कहा कि ठाकुर ने कहा है कि चार जन्म के बाद तुम्हें मुक्ति मिलेगी। यह बात सुनते ही साधक अत्यन्त दुखी हो रोने लगा। "ओह इतनी देर ? मैंने कितनी साधना की, और रात दिन भगवान का ध्यान करता हूँ। मेरे चारों ओर मिट्टी के ढेर जम गये हैं। प्रभो, चार जन्म और लगेंगे ?

साधक यह सब कहते कहते अत्यन्त करुण भाव से दुःख करने लगा। यह देख नारदजी चल पड़े और दूसरे साधक के पास गये। नारद को देखकर वह पूछने लगा, "प्रभु, क्या आपको मेरी बात याद रही ? क्या आपने भगवान से मेरे विषय में कुछ पूछा ?"

नारद ने उत्तर दिया कि हाँ पूछा था। भगवान ने कहा है कि तुम्हारे सामने जो इमली का पेड़ है उस पर जितने पत्ते हैं उतन ही जन्म तुम्हें भगवान को पाने में लगेंगे।

यह सुनते ही उस मनुष्य के आनन्द की सीमा न रही, सोचने लगा : आहा, भगवान की मेरे ऊपर कितनी कृपा है। योगी और ऋषि कई जन्म तक कठोर तपस्या करके भी उन्हें नहीं पा सकते हैं। देवता भी उनके दर्शनों के लिए व्याकुल रहते हैं और उन्होंने मुझ पर कृपा करके वचन दिया है कि मुझे दर्शन देंगे, आहा, मैं कितना भाग्यवान हूँ, मुझ पर उनकी कितनी दया है।

यह कह कर वह आनन्द से और भी नाचने लगा। उसका यह अद्भुत व्यवहार देखकर नारद चकित रह गये। उसी समय मधुर स्वर में आकाशवाणी हुई "साधना के रास्ते में जो लोग हिम्मत हार बैठते हैं उन्हें सिद्धि मिलनी कठिन है। इमली के वृक्ष के जितने पत्ते हैं उतने और जन्मों की बात सुनकर भी तुम नहीं घबराए। धन्य है तुम्हारा मनोबल। मैं वरदान देता हूँ कि तुम्हें अभी मुक्ति मिल जावे।"

रामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का वैशिष्ट्य

पं० रामकिंकर उपाध्याय

पण्डितजी के २ महत्वपूर्ण प्रवचनों का संकलन। कीमत १)

डाकखर्च अलग।

विवेक ज्योति कार्यालय, विवेकानन्द आश्रम,

रायपुर (म० प्र०)

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध

स्फूर्ति

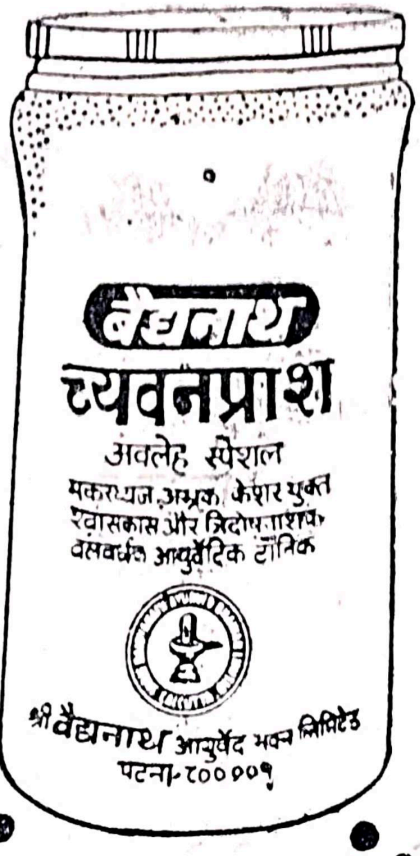

कफ खांसी नाशक

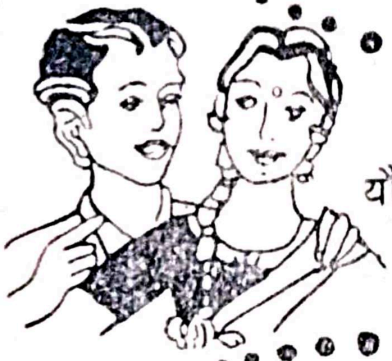

यौवन

दिमागी ताजगी

विकास

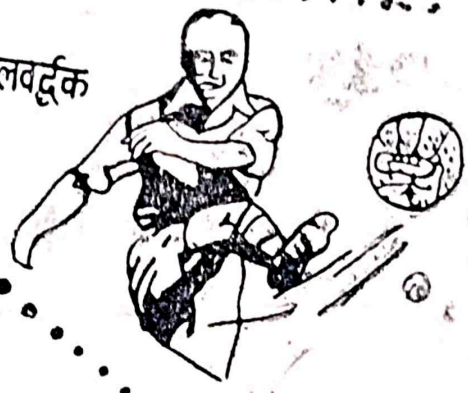

बलवर्द्धक

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

तत्त्वमसि

यदि संसार के नर-नारियों का दश-लक्षांश भी बिल्कुल चुप रहकर एक क्षण के लिए कहे, "तुम सभी ईश्वर हो; हे मानवो, हे पशुओ, हे सब प्रकार के जीवित प्राणियो ! तुम सभी एक जीवन्त ईश्वर के प्रकार हो," तो आधे घण्टे के अन्दर ही सारे जगत् का परिवर्तन हो जाय। उस समय चारों ओर घृणा के बीज न बोकर, ईर्ष्या और असत् चिन्ता का प्रवाह न फैलाकर सभी देशों के लोग सोचेंगे कि सभी 'वह' हैं। जो कुछ तुम देख रहे हो या अनुभव कर रहे हो, वह सब 'वही' है। तुम्हारे भीतर अशुभ न रहने पर तुम अशुभ किस तरह देखोगे ? तुम्हारे भीतर यदि चोट न हो, तो तुम किस प्रकार चोट देखोगे ? तुम स्वयं यदि खूनी नहीं हो, तो किस प्रकार खूनी देखोगे। साधु हो जाओ, तो असाधु भाव तुम्हारे अन्दर से एकदम चला जायगा। इस प्रकार सारे जगत् का परिवर्तन हो जायगा। यही समाज का सबसे बड़ा लाभ है। ये सब भारत में प्राचीन काल में अनेक महात्माओं द्वारा आविष्कृत और कार्य-रूप में परिणत हुए थे। पर आचार्यों की संकीर्णता और देश की पराधीनता आदि अनेकविध कारणों से ये सब भाव चारों ओर फैल न सके। फिर भी ये सब महान् सत्य हैं। जहाँ भी इन विचारों का प्रभाव पड़ा है, वहीं मनुष्य ने देवत्व प्राप्त कर लिया है। ऐसे ही एक देवस्वभाव मनुष्य के स्पर्श द्वारा मेरा समस्त जीवन परिवर्तित हो गया है;.....अब मठों की चहारदीवारी में आबद्ध न रहकर, केवल पण्डितों के पढ़ने की दार्शनिक पुस्तकों में आबद्ध न रहकर, केवल कुछ सम्प्रदायों के अथवा कुछ पण्डितों के एकाधिकार में न रहकर इन भावों का समस्त जगत् में प्रचार होगा, जिससे ये साधु, पापी, आबालवृद्धवनिता, शिक्षित, अशिक्षित सभी की साधारण सम्पत्ति हो जायँ। तब ये सत् भाव इस जगत् के वातावरण को ओतप्रोत कर देंगे और हम श्वास-प्रश्वास द्वारा जो वायु ले रहे हैं, वह अपने प्रत्येक स्पन्दन के साथ कहने लगेगी—तत्त्वमसि ! असंख्य चन्द्र-सूर्यपूर्ण यह समग्र ब्रह्माण्ड वाक्शक्तियुक्त प्रत्येक प्राणी के माध्यम से एक स्वर से कह उठेगा—तत्त्वमसि।

—स्वामी विवेकानन्द

(वि. सा. सं. पृ. १४५-४६)

मूल्य : २.५०

आनन्द डाइजेस्ट
पारिवारिक मासिक पत्रिका